सर्वेश्वर दयाल सक्सेना :

दृष्टि औ सृष्टि

डॉ. सुशील कुमार शर्मा

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना :

दृष्टि औ सृष्टि

डॉ. सुशील कुमार शर्मा

शांति मुद्रणालय

दिल्ली-110032

ISBN: 978-81-907112-3-4

© डॉ सुशील कुमार शर्मा

मूल्य : 250 रुपये

संस्करण : 2011

प्रकाशक : शांति मुद्रणालय 29/62, गली नं. 11, विश्वासनगर, दिल्ली-110032

शब्द-संयोजक : प्रतिभा प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

SARVESWAR DAYAL SAXENA: DRASHTI AUR SRASHTI By Dr. Sushil Kumar Sharma Price: Rs. 250.00

लेखकीय दृष्टि

हिंदी साहित्य में प्रयोगवादी या प्रतीकवादी कविता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महत्त्वपूर्ण इसलिए कि इस कविता ने शिल्प की जो क्रांतिकारी दृष्टि दी, हिंदी कविता में हुए बदलाव की वह युग-साक्षी बन गई। 'तार सप्तक' के आकाश में सप्त ऋषि की भाँति सात-कवियों ने अपनी प्रतिभा की आभा बिखेरी। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की काव्य-ज्योति इनमें सर्वाधिक प्रखर थी। पर, जो और जितना मूल्यांकन उनका किया जाना चाहिए था, नहीं हो सका।

हिंदी जगत् ने सर्वेश्वर को सर्वप्रथम कवि के रूप में ही जाना और कविता के रूप में ही वे चर्चित हुए। फिर उन्होंने कथा-जगत् में प्रवेश किया और उनकी लेखनी से दो उपन्यास और अनेक कहानियाँ निःसृत हुई। सर्वेश्वर यहीं नहीं रुके। इन्होंने स्वस्थ बाल-साहित्य का सृजन किया और जनता से अपनी अभिव्यक्ति के सीधे जुड़ाव के लिए नाटकों के संसार में प्रवेश किया। यात्रा-वृत्तांत लिखकर अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया, तो 'पराग' और 'दिनमान' का सम्पादन कर श्रेष्ठ पत्रकारिता के मानदंड स्थापित किए।

ऐसा बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न सृजनधर्मी अंततः उपेक्षित क्यों रहा? यह विचारणीय है। इसी ज्वलंत व्यथा का उत्तर तलाशने के लिए मैंने प्रस्तुत कृति की रचना का उपक्रम किया है। कृति में सर्वेश्वर के व्यक्तित्व और उनके जीवन-संघर्ष पर तो प्रकाश डाला ही जाना था, सर्वाधिक ध्यान उनके रचना-कर्म क्रो उद्घाटित करने पर दिया गया है। उनकी सम्पूर्ण विधागत लेखन-प्रक्रिया को कृति में स्पर्श करने का प्रयास मैंने किया है।

कृति के पठन-पाठन से अधिकाधिक साहित्य-प्रेमी जुड़ें, इसके लिए भाषायी सहजता को बनाए रखना अत्यावश्यक है। यही मूल मंत्र सर्वेश्वर के लेखन का रहा है। उन्हीं का भाषायी अनुसरण मैंने किया है। यही कारण है कि कृति की भाषा सर्वथा सामान्य है, और एक अनुसंचित्सु की भाषा है। विवेच्य लेखक के सम्पूर्ण

व्यक्तित्व एवं कृतित्व को अधिकाधिक प्रामाणिक तरीके से समझा जाए, इसीलिए विभिन्न विद्वानों को अधिकाधिक रूप में उद्धृत किया गया है।

प्रस्तुत कृति के प्रकाशन के अवसर पर मुझे अपनी पूज्य माता जी स्व. श्रीमती राजवती शर्मा एवं पूज्य पिताजी स्व. श्री गंगाशरण शर्मा का बार-बार स्मरण हो रहा है। मैं उनके प्रति नत मस्तक हूँ। सर्वाधिक निकट का निर्विघ्न लेखनार्थ सहयोग मुझे अपनी पत्नी डॉ. (श्रीमती) शशिबाला शर्मा तथा पुत्री सुकृति और पुत्र उत्कर्ष से प्राप्त हुआ। वे निश्चय ही धन्यवाद के पात्र हैं, इनके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। प्रस्तुत कृति के संबंध में और अधिक क्या कहूँ, 'कहने' के लिए अधिकृत मैं नहीं, सुधि पाठक हैं।

-डॉ. सुशील कुमार शर्मा

अनुक्रमणिका

अध्याय-1 : सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व 9

जन्म : शिक्षा परिवेश जीवन-संघर्ष व्यक्तित्व रचनाधर्मिता के विविध आयाम: कवि रूप कहानी लेखन अन्य विधाओं में लेखन : कृतित्व : काठ की घंटियाँ हवाएँ : कुआनो नदी : बकरी बाँस का पुल एक सूनी नाव : गर्म कुछ रंग कुछ गंध जंगल का दर्द : भों-भों खों-खों: लाख की नाक कल भात आएगा: अँधेरे पर अँधेरा: अब गरीबी हटाओ: खूंटियों पर टंगे लोग चरचे और चरखे।

अध्याय-2 : सर्वेश्वर का नाट्य-साहित्य 29

नाटकों की विषयवस्तु : समसामयिक समस्याएँ: बकरी: लड़ाई: अब गरीबी हटाओ कल भात आएगा भों-भों खों-खों लाख की नाक : नई दृष्टि : रंगमंचीय दृष्टि लोकप्रियता भाषा : नाटककार के रूप में: रचनात्मक जागरूकता : नूतन दृष्टिकोण।

अध्याय-3: सर्वेश्वर का कथा-साहित्य 67

हिंदी कथा-साहित्य में स्थिति श्रेष्ठ कथाकार: कहानीकार के रूप में : उपन्यासकार के रूप में।

अध्याय-4: सर्वेश्वर : समीक्षक के रूप में 79

रचनाकार और आलोचक का अंतः संबंध समीक्षक का दायित्व-बोध : समीक्षा स्वरूप और तत्त्व सर्वेश्वर का समीक्षक व्यक्तित्व : कला संबंधी दृष्टि : संस्कृति संबंधी दृष्टि ।

अध्याय-5: सर्वेश्वर रचनात्मकता के अन्य आयाम 91

संस्मरण : अर्थ और विशेषता संस्मरण और यात्रा-वृत्तान्त के अंतर्संबंध : कुछ रंग कुछ गंध : शिल्पगत सौंदर्य अनुवाद संपादक रूप ।

अध्याय-6 : सर्वेश्वर : पत्रकारिता दृष्टि 101

पत्रकारिता: पत्रकारिता के गुण-धर्म पत्रकारिता की आचार-संहिता : पत्रकारों की कोटियाँ : पत्रकारिता का आदर्शात्मक स्वरूप : पत्रकारिता और साहित्य का अंतरंग संबंध पत्रकारिता से जन्मी साहित्यिक विधाएँ : सर्वेश्वर का समर्थ माध्यम पत्रकारिता सर्वेश्वर की साहित्यिक पत्रकारिता: सर्वेश्वर की पत्रकारिता के विविध आयाम ।

अध्याय-7: सर्वेश्वर : समग्र मूल्यांकन 120

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न : सर्वेश्वर की लोक-दृष्टि दृष्टि : सर्वेश्वर की संवेदनागत जनपक्षधरता नाटककार के रूप में समीक्षक के रूप में विकासशील रचना- कथाकार के रूप में:

पत्रकार के रूप में।

अध्याय-1

सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना भारतीय जनमानस की मुक्ति के स्वप्न द्रष्टा थे। वे सच्चे अर्थों में जनता के कवि हैं। वे एक ऐसे जागरूक व प्रखर रचनाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं जो सुखी एवं समृद्ध भारत की प्रक्रिया में संलग्न हैं। शोषण, अन्याय व झूठ के खिलाफ संघर्ष ही उनके लेखन का मूल स्वर रहा है। काव्य रचना के साथ-साथ कहानी, नाटक, उपन्यास, पत्रकारिता आदि सभी विधाओं में उनकी लेखनी समान गति से चलती रही है। अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने देश की वर्तमान परिस्थिति से मुक्ति का मार्ग दिखाते हुए एक सजग दायित्व बोध का परिचय दिया है। अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने पाठकों के अंतर्मन को उद्वेलित एवं जाग्रत करने का प्रयास किया। वे इस तथ्य से अच्छी तरह परिचित थे कि जब तक भारतीय जनमानस स्वयं अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के लिए जागरूक नहीं होगा, तब तक सामाजिक परिस्थितियों में आमूलचूल परिवर्तन की कामना दिवास्वप्न से अधिक कुछ नहीं होगी। वे अपने परिवेश को बदलने के आकांक्षी थे। वे अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों पर बारम्बार प्रहार करते रहे। सर्वेश्वर एक ऐसे रचनाकार थे जो जनता से विनम्रतापूर्वक सीख कर पुनः जनता को लौटा देने की नीति पर आजीवन चलते रहे।

रचनाकार की रचना प्रक्रिया को भली-भाँति समझने के लिए उसके परिवेश के साथ-साथ उसके व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन-संदर्भों की जानकारी अत्यावश्यक है। इसके अभाव में रचनाकार की रचना-प्रक्रिया का वास्तविक मूल्यांकन संभव नहीं है। सर्वेश्वर के रचनात्मक लेखन का मूल्यांकन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उनके व्यक्तित्व का निर्माण करने वाली प्रक्रिया से जुड़े सभी पक्षों को भली-भाँति विश्लेषित किया जाए। कोई भी रचनाकार अपने समय और परिवेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। इसी कारण से रचनाकार की रचना-प्रक्रिया और वैचारिक

मान्यताओं की सही रूप में प्राण करने के लिए उसके जीवन-संदभों को गहराई म जानना आवश्यक है।

किसी भी साहित्यकार का जीवन और लेखन एक दूसरे के विम्व-प्रतिविम्व के सदूज होते हैं। अपने जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों को साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त करता है। अपनी कलात्मक प्रतिमा से आपबीती पर जगवीती का आरोप कर देता है। साहित्यकार के अनुभव और उसकी रचनाएँ एक-दूसरे की पूरक होती हैं। किसी भी साहित्य में साहित्यकार के जीवन की आशा-निराशा, अवसाद, उत्साह, हास्य-रुदन सब कुछ स्पष्ट दृष्टिगत होता है। उसके जीवन की सारी विडम्बनाएँ, अकेलापन, सुख-दुख, आशा-आकांक्षा उसके लेखन में दिखाई देती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि साहित्य की उत्पत्ति सीधे मानव-जीवन से होती है। मानव जीवन को प्रभावित करना ही साहित्य का लक्ष्य है। जिस परिवेश और समाज को मानव देखता है, अनुभव करता है, सोचताः और समझता है, उन सबका चित्रण साहित्य में होता है।

साहित्य और जीवन अभिन्न हैं। साहित्य के अध्ययन का कारण भी जीवन में ही खोजा जाना चाहिए। इस तथ्य को रेखांकित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- "साहित्य मानव जीवन से सीधा उत्पन्न होकर सीधे मानव जीवन को प्रभावित करता है। साहित्य में उन सारी चातों का जीवंत विवरण होता है, जिसे मनुष्य ने देखा है, अनुभव किया है, सोचा है और समझा है। साहित्य जीवन से सीधे उत्पन्न होता है। इसका अर्थ यह है कि साहित्य जीवन में ही रहता है और उसके पढ़े या लिखे जाने का कारण भी जीवन में ही खोजना चाहिए।" अपने कथन को और स्पाट करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं "इस कथन का और भी स्पष्ट अर्थ यह है कि साहित्य का विचार, उसकी अच्छाई-बुराई का निर्णय और उसकी महत्ता को जाँच के लिए हमें सब समय किसी शास्त्र के या किसी बड़े आदमी के वाक्य को अक्लम्ब मानने की जरूरत नहीं (यद्यपि यह बात अनावश्यक नही है)। यदि जीवन और साहित्य में सचमुच संबंध है तो हमारे जीवन में ही उसके समझने और ग्रहण करने की शक्ति भी होनी चाहिए, वस्तुतः ऐसा ही होता है।""

द्विवेदी जी के कथन से यह स्पष्ट है कि साहित्यकार को साहित्य-सृजन की प्रेरणा देने वाले सारे उपादान मानव जीवन में ही उपस्थित हैं। साहित्यकार अपनी साहित्यिक प्रतिमा, विवेक-बुद्धि संपन्नता और संवेदनशीलता के कारण अपने परिवेश को भली-भाँति समझकर स्वयं को विविध रूपों में अभिव्यक्त करता है। साहित्यकार की सार्थकता तभी सिद्ध होती है, जब वह अपने साहित्य में अपने परिवेश का वास्तविक चित्रण करता है। साहित्यकार के व्यक्तित्व और कृतित्व को

भली-भाँति परखने के लिए आचार्य द्विवेदी जी' ने कुछ सिद्धांतों को समझने पर विशेष जोर दिया है:

1. वह किस काल में पैदा हुआ?

2. यह किस जाति और समाज में पैदा हुआ?

3. उसके समसामयिक और पूर्ववर्ती अन्य प्रसिद्ध लेखक कौन-कौन थे और उनसे उसका कोई संबंध था या नहीं?

4. उसका व्यक्तिगत जीवन क्या और कैसा था?

कोई भी साहित्यकार अपनी युगीन राजनीतिक-सांस्कृतिक और अन्य परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। साहित्यकार की चेतना परिवेश से बड़े गहरे प्रभाव ग्रहण करता है। साहित्यकार की साहित्यिक दृष्टि अपने वर्ग के जातीय गुणों के साथ अपने चारों ओर के जन समूह के आचारों-विचारों को रचा-पचा कर विकसित होती है। साहित्यकार के व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य को सही ढंग से समझने के लिए उसके पूर्ववर्ती और समवर्ती लेखकों का परिचय आवश्यक होता है।

तात्पर्य यह कि संस्कृतियों, परंपराओं और परिवेश के समन्वित प्रभाव से पोषित होकर ही रचनाकार का व्यक्तित्व निर्माण संभव हो पाता है। अतः स्पष्ट है कि इसका विस्तृत और गहन विश्लेषण साहित्यकार और साहित्य दोनों का सम्यक् रूप से समझने में सहायक सिद्ध होगा।

जन्म

उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के 'पिकौरा' नामक ग्राम में 15 सितम्बर, 1927 को सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जन्म हुआ था। जिस परिवार में उनका जन्म हुआ, उसका वातावरण साहित्यिक था। अतः सर्वेश्वर का साहित्य की ओर रुझान स्वाभाविक ही था। इनके पिता साहित्य प्रेमी तो थे ही, साथ ही साथ कविता भी लिखते थे। इनके पिता पूर्णतः आदर्शवादी रहे। वे स्वतंत्रता के हिमायती थे, गांधी जी के असहयोग आंदोलन का उन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने नौकरी करने से साफ इंकार कर दिया। पिता की आदर्शवादी सोच का प्रभाव सर्वेश्वर पर काफी हद तक पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप वे प्रारंभ से ही स्वाभिमानी रहे। अपनी मों के विषय में सर्वेश्वर लिखते हैं- "वे घारा प्रवाह संस्कृत बोल सकती थीं तथा 'जयद्रथ-वघ' को पारिवारिक उत्सवों में अपनी सुरीली आवाज में गाया करती थीं।""

सर्वेश्वर के व्यक्तित्व पर माता-पिता के विचारों का बहुत गहरा प्रभाव था। उन्हें माता-पिता का वात्सल्य और स्नेह तो प्राप्त था, किंतु परिवार के कठोर अनुशासित वातावरण में वह दब-सा जाता था। इसका कारण यह था कि उनका पूरा

परिवार आर्य समाजी था। आर्य समाज के कठोर नियमों का पालन परिवार के सभी सदस्यों के लिए अनिवार्य था। नित्य-हवन-संध्या के बाद ही भोजनादि की व्यवस्था थी। यह नियम बच्चों पर भी लागू था। बच्चे माता-पिता के स्नेह की अपेक्षा उनके कठोर अनुशासित रूप को ज्यादा अनुभव करते थे।

सर्वेश्वर के घर के समीप एक अनाथाश्रम था, जिसमें अनाथ बच्चों का पालन-पोषण होता था। अनाथाश्रम में प्रतिदिन भजन व गीत बच्चों द्वारा गाये जाते थे। इन भजनों और गीतों ने सर्वेश्वर को बचपन से ही साहित्य-सृजन हेतु प्रेरित किया। उन्हीं के शब्दों में, "घर के बराबर में एक अनाथाश्रम था, यहाँ के बच्चे या तो राष्ट्र-प्रेम के गीत गाते थे या आर्य समाजी भजन। पढ़ाई शुरू होने के पहले ही से गीत मुझे आकर्षित करने लगे थे।""

शिक्षा

बस्ती जिले में ही सर्वेश्वर की प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण हुई। बस्ती से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर बनारस चले गए। पिता की इच्छा थी कि वे कचहरी की नौकरी करें। उन्होंने इसका प्रबंध भी कर दिया था। इनकी माता जी गवर्नमेंट हाईस्कूल की अध्यापिका थीं। पिता की इच्छा के विपरीत माता ने इन्हें आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए न सिर्फ प्रेरित किया, बल्कि पढ़ाई हेतु सक्रिय सहयोग भी प्रदान किया। माता की प्रेरणा और सहयोग से इन्होंने बनारस के क्वींस कॉलेज में प्रवेश ले लिया। इंटरमीडिएट की परीक्षा बनारस से पास करने के बाद उन्होंने इलाहाबाद से क्रमशः बी.ए. और एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की।

परिवेश

सर्वेश्वर ने अपने समय और परिवेश को अपने साहित्य में पूरी ईमानंदारी के साथ प्रस्तुत किया। प्राचीन परंपराओं और टूटते हुए पुराने जीवन-मूल्यों को बदलते हुए नवीन जीवन-मूल्यों से जोड़कर उसे बराबर संघर्षशील और जीवंत बनाए रखने का प्रयास उन्होंने ने किया। इस प्रयास में उन्हें पूर्ण सफलता भी मिली। इसका प्रमाण उनका जीवंत साहित्य है। समसामायिक समस्याओं के प्रति वे एक जागरूक कवि के रूप में पाठक के सामने उपस्थित होते हैं, तो बदलती सामाजिक व्यवस्था, बिखरते जीवन-मूल्यों, गरीबी और बेरोजगारी को अपने नाटकों का मूल विषय बनाकर ये एक जागरूक नाटककार की भूमिका संपादित करते हैं। सर्वेश्वर का साहित्य हिंदी-जगत् को नई दिशा देने का कार्य करता है। इनका साहित्य भारतीय जनमानस को तंद्रावस्था से जाग्रत करने का सशक्त माध्यम बना है। जीवन के विविध रंगों और विविध पहलुओं को इन्होंने अपनी रचनाओं में सम्मिलित किया।

सर्वेश्वर को अपने जीवन में बहुत संघों और त्रासद परिस्थितियों से गुजरना पड़ा। इन्हीं त्रासद परिस्थितियों ने ही इनके के व्यक्तित्व को दृढ़ता प्रदान की। संयषों और परिस्थितियों से दुखी या हार मानने के बजाए वे उन पर विजय प्राप्त करने में विश्वास रखते थे। उन्हें अपने ऊपर पूर्ण विश्वास था। वे प्रत्येक मनुष्य को संघर्षों से लड़ने की प्रेरणा देते थे। उनका मानना था कि व्यक्ति को अपनी मौलिकता को विकसित कर स्वयं अपने अस्तित्व का निर्माण करना चाहिए। मानव-जीवन, जो कि ईश्वर की सबसे सुंदर व श्रेष्ठ कृति है, इसे सही ढंग से विकसित किया जाना चाहिए।

सर्वेश्वर की प्रेरणा का स्रोत उनकी माँ थीं। माँ के प्रति उनका अगाध प्रेम था और माँ से ही उन्होंने यह सब कुछ सीखा था। माँ के प्रति अगाध प्रेम व आदर- भावना ने ही सर्वेश्वर के अंतर्मन में स्त्री जाति के प्रति सम्मान की भावना भर दी थी। इसीलिए अपने साहित्य में उन्होंने स्त्री के पृथक् अस्तित्व-निर्माण और उसकी मुक्ति पर जोर दिया है। अपने जीवन-काल में वे स्वयं तो संघर्षरत रहे ही, दूसरों को भी सभी स्थितियों में संघर्ष की प्रेरणा प्रदान करते थे। उनके परिवेश ने उन्हें साहस के साथ जीना सिखाया था। प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी उन्हें भयाक्रांत नहीं कर पाती थीं। उन्हीं के शब्दों में, "जीवन में अक्सर ऐसे क्षण आते हैं, जब सूरज से रोशनी नहीं मिलती, वह उम्मीद भी छोड़नी पड़ती है-हर रिश्ता बुझ जाता है। उस समय हमें अपने भीतर की रोशनी जलानी पड़ती है और यह रोशनी हर इंसान को स्नेह से मिलती है। यही आत्मा का प्रकाश है, हर एक का अपना सूरज, अपना चाँद-हर अकेले की अपनी शक्ति"।"" अपने संपूर्ण जीवन काल में वे स्वयं भी इसी रोशनी का अवलंब लेकर विषम-से-विषम परिस्थितियों में विजय की अदम्य इच्छा मन में सँजोकर चलते रहे। सर्वेश्वर की कविताओं में इनके संवदेनशील व्यक्तित्व की झलक भी मिलती है। प्रिय व्यक्तियों या परिचितों की मृत्यु पर प्रायः ये आहत हो जाते।

जीवन-संघर्ष

प्रारंभिक जीवन की अत्यंत संघर्षमय और जटिल परिस्थितियों के परिणामस्वरूप सर्वेश्वर के बहुआयामी एवं जटिल व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था। प्रारंभ से ही नियति उन्हें संघर्ष करने के लिए विवश करती रही। मात्र 16 वर्ष की अवस्था में ही माता का निधन हो गया। उस समय सर्वेश्वर इंटर के छात्र थे। इनके पिता प्रायः बस्ती में ही रहा करते थे। असीम योग्यता के बावजूद भी वे कोई नौकरी नहीं करते थे, क्योंकि उनकी आदर्शवादी सोच उन्हें ऐसा करने से रोकती थी। इसका परिणाम

यह हुजा कि घर का सारा खर्च चलाने का दायित्व सर्वेश्वर के ऊपर आ गया ।

इस जिम्मेदारी को वहन करने हेतु सर्वेश्वर ने कई नौकरियाँ कीं। कभी क्लर्क गया।

तो कभी स्कूल मास्टरी का कार्य करके किसी प्रकार से जीवन निर्वाह करते रहे। किंत को तृप्ति नहीं मिल पाती थी। इसी कारण इससे उनके साथ जाग्रत हुआ, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। नौकरी से इस्तीफा देने के बाद कुछ समय तक सर्वेश्वर ने आकाशवाणी है वियान केंद्रों में सहायक प्रोड्यूसर का कार्य किया। इसके पश्चात् सन् 1965 में विवितरक पत्र 'दिनमान' के संपादकीय विभाग में उपसंपादक का कार्य किया। उस समय दिनमान' के संपादक अज्ञेय थे। 'दिनमान' में सर्वेश्वर ने बारह-तेरह वयों तक कार्य किया। इसके पश्चात् कुछ समय तक इन्होंने बच्चों की मासिक पत्रिका 'पराग' का संपादकत्व भी संभाला। 'पराग' का संपादन करते हुए उसके स्वस्थ और रचनात्मक व्यक्तित्व-निर्माण में सर्वेश्वर ने अपना पूर्ण योगदान दिया।

उनके संपूर्ण जीवन का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि उनका जीवन प्रारंभ से अंत तक संघयों से भरा रहा। किशोरावस्था में ही माता का असमय निधन, युवावस्या में पली का असमय निधन। अत्यंत छोटी-सी उम्र में एक मात्र पुत्र का निधन और पत्नी की असामयिक मृत्यु के उपरांत दो छोटी-छोटी बच्चियों का पालन-पोषण दिल्ली जैसे महानगरीय परिवेश में करने का साहस सर्वेश्वर जैसा जिजिविषायुक्त व्यक्ति ही कर सकते थे। इतने दुखद क्षणों में भी सर्वेश्वर ने अपने धैर्य, संयम और दृढ़ता को बनाए रखा। इतना कुछ झेलते हुए साहित्य-सर्जना में अनवरत रह कर उसके तानव को भी ये पूरे जीवन काल में झेलते रहे।

व्यक्तित्व

संकल्पशक्ति : जिन परिस्थितियों में उन्होंने जन्म लिया था, जिस परिवेश में वे पले-बढ़े थे उन्हीं परिस्थितियों के कारण ही उनमें संशयहीन संकल्प शक्ति का उदय हुआ। सर्वेश्वर के विराट् व्यक्तित्व का सबसे बड़ा गुण उनकी अद्‌भुत संकल्प शक्ति थी। इसी संकल्पशक्ति ने उनके मन में समाज के दलित और शोषित वर्गों के प्रति गहरी सहानुभूति पैदा की और इसी सहानुभूति ने उनको को इस बात के लिए प्रेरित किया, कि वे जीवन के अंतिम क्षण तक अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाते रहे। अन्याय के विरोध में वे सदैव खड़े दिखाई दिए। 'दिनमान' के लोकप्रिय स्तंभ 'चरचे और चरखे' के बहुत से लेखों में उनके इस संकल्प की झलक परिलक्षित होती है। सर्वेश्वर के इन लेखों में राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं को लेकर किए गए व्यंग्य बहुत तीखे और पैने हैं। ये व्यंग्य इतने पैने हैं कि संबद्ध पक्षों को

भीतर तक चीर देते हैं। अपनी लेखनी के माध्यम से अन्याय और शोषण के विरुद्ध बहुत बड़ी लड़ाई वे आजीवन सड़ते रहे। अपनी लेखनी के द्वारा थे समाज को बदलने की प्रक्रिया में संलग्न रहे। समाज के लिए वे हमेशा चिंताशील बने रहे। उनका दृष्टिकोण था कि चिन्तन का दायरा जितना व्यापक होगा, वह चिन्तन उतना ही समाजोपयोगी होगा।

आज का समाज ही सर्वेश्वर की प्रेरणा का स्रोत था, जिसे बदलने की आकांक्षा ने उनके साहित्य में तीखे स्वर भरे और तीखी धार प्रदान की। उनका साहित्य मानवता का पक्षवर है। अपने साहित्य के माध्यम से वे एक ऐसे समाज का निर्माण करने के आकांक्षी थे, जिसमें वास्तविक सत्ता जनता के हाथ में हो। एक ऐसा समाज, जिसमें शोषण, असमानता, अन्याय के लिए कोई स्थान न हो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार जी सके। सबको विकास के समान अवसर मिलें।

इस तथ्य से वे भली-भाँति परिचित थे कि यह कार्य अत्यंत कठिन है। इस कठिन कार्य में आने वाली कठिनाइयों और बाधाओं के निराकरण का वे चिन्तन करते थे। उनके भीतर का साहित्यकार अपने दायित्वबोध को संपूर्णता से अनुभव कर उस दायित्व को पूर्ण करने की प्रक्रिया में संलग्न था। अपने रचनात्मक दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए वे स्वयं कहते हैं कि "समाज और व्यक्ति को बदल कर मनचाहा बनाने की बात संभव न हो, तो भी लिखने के कर्म से मैं व्यक्ति के समक्ष अपना प्रिय व्यक्ति और समाज के समक्ष अपने सपनों का समाज, मूर्ति की तरह ही सही, लेकर खड़ा तो हो सकता हूँ। रचना और कुछ नहीं तो साक्षात्कार तो है ही।" जिस समाज का यह स्वप्न देख रहे थे, उसके बारे में उनकी स्वीकारोक्ति है, कि इसमें गरीबी, शोषण, अर्थहीन जानलेवा संघर्ष और व्यक्ति को तोड़ने वाली कुंठा, अमानुषिकता और बर्बरता न हो।" एक स्वस्थ समाज का निर्माण वे चाहते थे और इसी के वे स्वप्नदृष्टा थे।

सहजता : सर्वेश्वर का व्यक्तित्व बाहर से देखने पर बहुत गंभीर-सा लगता था, परंतु वास्तविकता कुछ और ही थी। इस वास्तविकता को सर्वेश्वर नितांत निजी क्षणों में जीते थे। अपने साहित्य में समाज की जड़ता और उसकी कुरीतियों पर बड़े तीखे एवं पैने व्यंग्य करते थे। किंतु जब वह एक व्यक्ति के रूप में लोगों से मिलते थे, तो मिलने वाले को यह लगता ही नहीं था कि यह व्यक्ति जो समाज के प्रति इतने कठोर व्यंग्य भी कर सकता है। एक प्रकार की आंतरिक सहजता उनके व्यक्तित्व में समाविष्ट थी। उनके इस गुण के बारे में डॉ. लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपने एक संस्मरण में लिखा है- "बाहर से देखने में जिन लोगों को सर्वेश्वर का व्यक्तित्व गहन, गंभीर, चट्टान-सा लगता था, उन्होंने यदि सर्वेश्वर को नितांत निजी क्षणों में देखा होता, तो उन्हें लगा होगा कि सर्वेश्वर, जो कुछ देखने में लगते हैं, वह नहीं

है. बल्कि उसके विपरीत जो वह अपने घर में अपनी बच्चियों के साथ जीते हैं, वही असली हैं। अपने निजत्व और सार्वजनिक जीवन के आयामों में इतना अंतर शायद हो कहीं है।""

निजी जीवन में सर्वेश्वर काफी विनोदी एवं कोमल स्वभाव के रहे। उनके स्वभाव को देखकर कोई भी यही कहता कि साहित्यकार सर्वेश्वर कोई और ही होंगे। साहित्यकार के व्यक्तित्व-निर्माण में उसके जीवन के निजी अनुभवों की भूमिका ही मुख्य होती है, परंतु व्यक्तिगत जीवन-संघर्ष एवं निजी अनुभव ही समग्र व्यक्तित्व-निर्माण में प्रमुख नहीं होते, बल्कि अध्ययन, सामाजिक अनुभव आदि का भी अपना महत्त्व होता है।

जीवंतता : जीवन के प्रति सर्वेश्वर का दृष्टिकोण स्वस्य एवं सकारात्मक था। दृढ़ संकल्प से युक्त होने के कारण उनका व्यक्तित्व जीवंतता से परिपूर्ण था । यद्यपि सर्वेश्वर तीव्र आवेगों और उत्तेजनाओं वाले व्यक्ति थे, जिसका पूरा प्रतिफल उनके लेखन और आपसी संबंधों दोनों पर पड़ता था। वे जिस तथ्य को तीव्रता से अनुभव करते, उस पर विश्वास करके उसे उतनी ही तीव्रता से शब्द देते। वे तर्क की अपेक्षा भावना को अधिक महत्त्व देने वाले कवि थे। अतिशय वौद्धिकता के हिमायती वे कभी नहीं रहे। उनके लिए कविता का सीधा-सा अर्थ था- "आदमी और आदमी को बाँधने या बाँध सकने वाले मूल भावों और प्रतीतियों का उद्दीपन ।"

उनका व्यक्तित्व उनके संपूर्ण साहित्य में बिखरा है। समाज में अनवरत बढ़ते शोषण और अन्याय को देखकर वे मूक दृष्टा बनकर बैठ नहीं पाए। शोषण और अन्याय के विरुद्ध उन्हें अपनी लेखनी चलानी पड़ी। अपनी रचनाओं के प्रति वे तटस्थ और निरपेक्ष भाव रखते थे। यह सर्वेश्वर के व्यक्तित्व का सबसे विलक्षण गुण था। इस बारे में वे प्रायः कहते थे- "मैंने जो अनुभव किया, जैसा लगा, लिख दिया। लोग पढ़ें और आनंद लें। अब मुझे उससे क्या लेना-देना।" अपनी कृति के प्रति इस प्रकार की निस्संगता उनके महान साहित्यकार होने का प्रमाण है।

कला प्रेमी : सर्वेश्वर जन्म से ही कला प्रेमी रहे। विभिन्न कलाओं से उनका लगाव था। "सर्वेश्वर उन इने-गिने साहित्यकारों में से थे, जिन्हें विभिन्न कलाओं से सिर्फ लगाव ही नहीं था, उनके भीतरी रिश्ते, उनकी आपसी निर्भरता का भी उन्हें गहरा अहसास था। इस लगाव और अहसास की छाप उनके व्यक्तित्व और साहित्य- दोनों पर दिखाई पड़ने लगी थी, जो उनकी रचना-यात्रा में एक नए और उत्तेजक मोड़ की संभावना को रेखांकित करती थी। यह इसलिए और भी कि उनकी इस कला- रसिकता में कोई दिखावा या अहंकार नहीं था, बल्कि शायद इसने उन्हें अधिक सौम्य, ग्रहणशील और उदार चनाया था, जिसके कारण वह हर नए ईमानदार विचार,

अभिव्यक्ति और कोशिश का सहज उत्साह के साथ स्वागत कर पाते थे, भले ही ये उससे सहमत न हों।""

हाल के पिछले वर्षों में सर्वेश्वर के रचना-संसार का विस्तार उनके व्यक्तित्व के विस्तार के समानांतर ही रहा है। उनकी कविताओं की दुनिया बड़ी हो गई। यह पहले से कुछ अधिक जटिल, बहुस्तरीय और समावेशी भी। इन कविताओं के स्वर तो बदले ही हैं, साथ ही उसके सरोकार भी बदले हैं। इन में तीव्रता और सूक्ष्मत्ता अधिक है।

नेमिचंद्र जैन इस परिवर्तन को लक्ष्य करते हुए कहते हैं कि "इस परिवर्तन का एक साक्ष्य उनकी कहानियों, नाटकों, समीक्षाओं, टिप्पणियों में तो है ही, इनसे भी ज्यादा बच्चों के लिए उनके लेखन में भी है। उनकी बच्चों के लिए लिखी गई कविताएँ, कहानियाँ, नाटक सभी हिंदी में बेमिसाल हैं। ऐसा सहज, स्वतः स्फूर्त और कल्पनाशील लेखन गहरे लगाव और दायित्व बोध से ही संभव है और समाज और व्यक्ति के जीवन की जड़ों तक उसके मूल स्रोतों तक पहुँचने की निश्छल ललक से ही उपज सकता है।""

सरलता : सर्वेश्वर अत्यंत सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। जिस प्रकार बच्चे पल- भर में रुष्ट और पल-भर में ही खुश हो जाते हैं, वैसे ही सर्वेश्वर का भी स्वभाव था। एक ओर उग्र होने पर वे विवेक और संयम की हर सीमा लाँघ जाते, तो वहीं दूसरी ओर आत्मीयता की स्थिति में इतने भावुक हो जाते कि उनकी कोमलता सबको भावुक कर देती। अपनी अतिशय उदार शीलता के कारण वे जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यवहार कुशलता का परिचय देते थे। उदारता, सहज स्वभाव और अपने दायित्व बोध के कारण ही सर्वेश्वर को अपने मित्रों एवं पाठकों से शुभाकांक्षा और सहयोग बराबर मिलता रहा।

सर्वेश्वर के अत्यंत प्रिय मित्र और सहकर्मी लेखक लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपने एक लेख - 'सर्वेश्वर का हाथ मेरे कंधों पर है' में लिखा है- "पति के रूप में मैंने सर्वेश्वर को पत्नी की अटूट सेवा करते देखा है। पिता के रूप में उनके भाव प्रवण वात्सल्य को रोम-रोम से थिरकते हुए देखा है। पड़ोसी के रूप में रात-रात भर जाग कर हैजे और चेचक के रोग से संतप्त लोगों की चौबीस-चौबीस घंटे तक सेवा करते देखा है। मित्र के रूप में अपने मित्र के छोटे-से-छोटे दुख को अपने ऊपर लेते देखा है। सहयात्री के रूप में सारी यात्रा की थकान को अकेले अपने ऊपर लेकर झेलते हुए देखा है। यहाँ तक कि मैंने सर्वेश्वर को भिखारियों पर बिगड़ते हुए देखा और जब निराश होकर भिखारी जाने लगता, तो बुलाकर खाना खिलाते देखा है।"""

मानवीयता : सर्वेश्वर जीवन-भर संघर्षरत रहे, किंतु संघर्षों के झंझावातों को

झेलते हुए भी ये हर भूमिका का निर्वाह भली-भाँति करते दिखाई देते हैं। मेलते व्यक्तित्व अत्यंत विराट् था। इसी विराट् व्यक्त्वि से प्रभावित लक्ष्मीर उनका लिखते हैं- "नाराज होने में दुनिया व समाज और स्वयं अपने से को चामराज होते थे, किंतु सब कुछ भुताकर वह मानवीय स्तर पर छोटी-से-छोटी करने में भी संकोच नहीं करते थे। कारण यह है कि अपनी लेखन-प्रक्रिया में बारे संसार का दुख-दर्द समेट लेना चाहते थे और जैसे ही समाज का दुख-दर्द उनहें सारे में उनके पास आ जाता था, तो यह उस संसार में अपने कमरे की तलाश करने लगते थे। सर्वेश्वर की संपूर्ण रचनाएँ इसी व्यक्तिपरक संवेदना से समष्टि की ओर उर्ध्वगामी होती हुई दिखाई देती हैं। और समष्टि चेतना एक प्रवाह के साथ समष्टि से कवि मानस की ओर प्रवाहित होती हुई मिलती है। सर्वेश्वर की रचनाधर्मिता की यही विशेषता है।"

रचनाधर्मिता के विविध आया

यह सत्य है कि सर्वेश्वर मूलतः कवि थे, किंतु उन्होंने नाटक, कहानी, उपन्यास, संपादन, पत्रकारिता, यात्रा-संस्मरण आदि के क्षेत्रों में भी महत्त्वपूर्ण लेखन कार्य किया है। साहित्यिक क्षेत्र में उनका प्रवेश सर्वप्रथम कहानीकार के रूप में हुआ था। कदि पक्ष की अधिक प्रबलता के कारण उनके कहानी लेखन की उतनी समीक्षा जगत् में नहीं हुई।

कवि रूप

सर्वेश्वर जब पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी के रूप में श्रीधर पाठक की कविता पढ़ रहे थे, उसी समय उनके मन के भीतर सोया हुआ कवि जाग उठा। कवि की व्याख्या करते हुए उनके शिक्षक ने कहा कि प्रकृति को शांत होकर घंटों एकटक निहारते हुए कवि के अंतस से कविता स्वतः फूट पड़ती है। इसी से प्रभाव ग्रहण करते हुए सर्वेश्वर ने भी ठीक उसी आधार पर एक कविता रच डाली, जिसकी प्रथम पंक्ति में प्राकृतिक चित्रण तथा दूसरी में जीवन की यथार्थ अनुभूति का चित्र खींचा गया है:

तीसी के फूल कैसे खेत में लहलहाते है

तीसी को पीसकर लोग फोड़े पर लगाते हैं।[17]

सर्वेश्वर इसी प्रकार धीरे-धीरे कुछ पंक्तियों की कविता दोहे या चौपाई के रूप में लिखने लगे। इन प्रारंभिक रचनाओं को ही उनकी काव्य-प्रतिभा का बाल-रूप मानना चाहिए :

बंगाली घोती एक झारी, देखि अप्सरा सुधि विसारी[18]

इस प्रकार उनका लेखन चलता रहा। नवीं कक्षा तक जाते-जाते उनके हृदय में देश-भक्ति की भावना का तीव्र संचार होने लगा था। उनके अंतःकरण में क्रांति की आग सुलगने लगी थी। उनके विद्यार्थी-जीवन का एक मित्र धर्मेंद्रनाथ त्रिपाठी था, इसी मित्र से उन्हें प्रेम और देश-भक्ति से ओतप्रोत कविताएँ लिखने की प्रेरणा मिली। वे स्वयं लिखते हैं- "स्कूल में एक ब्रजभाषा के कवि थे-ईश जी, दूसरे खड़ी बोली के कवि थे धर्मेंद्रनाथ त्रिपाठी। उनकी कविताओं से फिर लिखने का शौक हुआ और हम खड़ीबोली में प्रेम और देश-भक्ति की कविताएँ लिखने लगे।"[19] सर्वेश्वर की सबसे पहली कविता लखनऊ से प्रकाशित आर्यमित्र नामक पत्र में 1940 या 41 में प्रकाशित हुई। इन कविताओं की तर्ज बच्चन के गीतों की थी:

इस निराशा के गगन में कौन गीत सुना रहा था। [20]

सर्वेश्वर ने अपने ऊपर सुभद्रा कुमारी चौहान और बच्चन जैसे कवियों के प्रभाव को स्वीकार किया है- "सुभद्रा कुमारी चौहान और बच्चन से में प्रभावित था।"" देशभक्ति का बीज किशोरावस्था से ही सर्वेश्वर के मन में अंकुरित हो चुका था और इनका परिचय तब तक 'जोश मलीहाबादी' की ओजस्वी और देश-प्रेम में डूबी हुई शायरी से हो चुका था। सर्वेश्वर ने अपने एक संस्मरणात्मक लेख "मेरा बचपन और जोश" नामक शीर्षक में उन दिनों की चर्चा करते हुए लिखा है कि "जोश की शायरी से मेरा परिचय नवें दर्जे में हुआ। मैं नहीं कह सकता कि शुरुआत में किसी भी कवि ने मुझे इतना प्रभावित किया था, जितना जोश ने। हिंदी के कवि तो मेरे पाठ्यक्रम में थे-ऐसे दोस्त की तरह जो घर आते-जाते हों और जिनसे परिचय माता-पिता करवाते हों। लेकिन जोश उन दोस्तों जैसे थे, जो सफर में या बाजार में अचानक ठीक किसी मुसीबत के समय मिल जाते हैं और दिल के साथ हो लेते हैं।"

हाईस्कूल की शिक्षा ग्रहण करते समय सर्वेश्वर को कॉलेज से निकाल दिया गया। इसका कारण यह था कि वे देश-प्रेम की कविताएँ लिख रहे थे। इतना ही नहीं, वे तो इस क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभा रहे थे। कॉलेज से निष्कासन के कुछ दिनों बाद उसी कॉलेज के एक क्रांतिकारी बंगाली हेडमास्टर की सक्रियता एवं सहयोग से पुनः उन्हें प्रवेश मिला। सर्वेश्वर सर्वप्रथम जोश मलीहाबादी की जिस कविता से परिचित हुए, उसका उल्लेख भी उन्होंने किया है। वह कविता इस प्रकार है :

सलामें ताजदारे जर्मनी ए हिटलरे आजम"

बर्किंघम की खबर लेने जो अबकी बार तुम जाना

हमारे नाम से भी एक गोला फेंकते आना

भसम कर हाँ भसम कर चलके इंगलिस्ताँ भसम कर दे

जरा इन बदिमागों का गरूरों-नाज कम कर दे।

भगत को इसलिए मारा कि जीना चाहता था वह
वतन के दुश्मनों का खून पीना चाहता या वह
सुना तो होगा तूने एक बदवख्तों की बस्ती है
जहाँ जीती हुई हर चीज जीने को तरसती है
जहाँ मजदूर मेहनत करके मजदूरी नहीं पाता
अगर पाता है तो वह कभी नहीं पाता।"

कहानी लेखन

यह उस समय की घटना है, जब सर्वेश्वर इंटरमीडिएट के विद्यार्थी थे। उनके एक मित्र ने जो उनकी ही कक्षा का विद्यार्थी था, उन्हें अपनी एक कविता सुनाई। उस कविता को सुनकर सर्वेश्वर काफी हतोत्साहित हो गए। उस कविता ने सर्वेश्वर को नए सिरे से चिंतन करने पर विवश कर दिया। इंटर में पढ़ने वाला विद्यार्थी ऐसी कविता भी लिख सकता है, ऐसा उन्होंने कभी कल्पना में भी नहीं सोचा था। स्वयं सर्वेश्वर अपने एक साक्षात्कार में स्वीकारते हैं- "उससे इतना हतोत्साहित हुआ और उसके साथ ही उसकी कविता से मन ऐसा भरा कि कविता लिखना छोड़कर उसके प्रोत्साहन से कहानी लिखने लगा। उसके माध्यम से मैं 'प्रसाद परिषद' का सदस्य बना, साहित्यकारों के संपर्क में आया और साहित्यिक वातावरण में घुलने-मिलने लगा।""

सर्वेश्वर की पहली कहानी "क्षितिज के पार" शीर्षक से सन् 1945 में छपी। इस कहानी ने सर्वेश्वर को साहित्यिक जगत् में एक प्रभावशाली नवोदित कहानीकार के रूप में ख्याति प्रदान की। इसके पश्चात् उन्होंने "मौत की आँखें" नामक कहानी लिखी। इस समय वे प्रयाग विश्वविद्यालय में बी.ए. प्रथम वर्ष के छात्र थे। सर्वेश्वर की इस कहानी को प्रयाग विश्वविद्यालय कहानी प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ था। उनके प्रथम कहानी संग्रह 'काठ की घंटियों' में यह कहानी संकलित है। इसके ठीक अगले वर्ष सर्वेश्वर ने "जिंदगी और मौत" शीर्षक से कहानी लिखी। अपनी इन कहानियों के विषय में सर्वेश्वर का मत है कि "इन दो कहानियों के बल पर अगले वर्ष में महेंद्र प्रताप के कारण परिमल का सदस्य बना। परिमल की गोष्ठियों में उस समय निराला और पंत से लेकर प्रकाशचंद गुप्त तक आते थे। परिमल की ही गोष्ठी में पहली कहानी "मृत्युपाश" सुनाई जो किसी संकलन में नहीं हैं

अन्य विधाओं में लेखन

सर्वेश्वर ने कविता और कहानी के अतिरिक्त साहित्य की अन्य विधाओं में भी

प्रचुर मात्रा में साहित्य रचा है। अपनी वहुमुखी प्रतिभा के बल पर उन्होंने साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सार्थकता सिद्ध करने का प्रयास किया है, जिसमें वे सफल भी रहे हैं। सर्वेश्वर ने कहानी और कविता के माध्यम से अपने भोगे हुए परिवेश को व्यक्त किया। जिस समाज के निर्माण का स्वप्न वे देखते थे, उसका चित्र उनकी कहानियों और कविताओं में देखने को मिलता है। कहानी और कविताओं को माध्यम बनाकर उन्होंने समाज को बहुत कुछ प्रदान किया। किंतु कुछ ऐसा भी था जो कहानी और कविता के माध्यम से पाठकों तक प्रेषित नहीं हो पाता था। यह जो शेष बच जाता था, उन्हें सर्वेश्वर ने नाटकों, भिन्न कलात्मक प्रस्तुतियों पर व्यक्त की गई टिप्पणियों और पत्रकारिता में व्यक्त किया है।

सर्वेश्वर जीवन को स्वस्थ दृष्टिकोण से देखते थे और जीवन को उन्होंने संपूर्णता के साथ स्वीकारा है। उनकी संवेदनशीलता ने उन्हें जीवन के सभी पक्षों पर लेखन की प्रेरणा प्रदान की। जीवन के सभी पक्षों को काव्य की किसी एक ही विधा में व्यंजित करना दुष्कर कार्य है। यही कारण था कि जीवन के सभी पक्षों के लेखन हेतु उन्होंने उपयुक्त विधाओं का चयन किया।

अज्ञेय और रघुवीर सहाय जैसे प्रतिष्ठित और स्थापित साहित्यकारों के साथ बहुत वर्षों तक उन्हें कार्य करने का सौभाग्य मिला। 1965 से 1978 तक साहित्य के इन दो दिग्गजों के सान्निध्य में रहकर सर्वेश्वर ने अपने व्यक्तित्व के कई अदृश्य रूपों को निखारा। इस काल में वे 'दिनमान' जैसी विशिष्ट पत्रिका के उपसंपादक पद को सुशोभित कर रहे थे। 'दिनमान' के एक स्तंभ 'चरचे और चरखे' में सर्वेश्वर ने तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक घटनाओं पर यथार्थपरक और सार्थक टिप्पणियाँ लिखीं। इन सार्थक टिप्पणियों में सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र की ज्वलंत समस्याओं पर जिस बेबाकी और निष्पक्षता से सर्वेश्वर ने लेखनी चलाई है, वह उनके उस क्षेत्र की लोकप्रियता में मील का पत्थर सिद्ध हुई है।

कृतित्व

काठ की घंटियाँ : सन् 1959 में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय के संपादन में सर्वेश्वर की कहानियों, कविताओं और एक लघु उपन्यास 'सोया हुआ जल' का संयुक्त संग्रह सर्वप्रथम भारतीय ज्ञानपीठ काशी से प्रकाशित हुआ। सर्वेश्वर के लेखक रूप का यही प्रथम परिचय था, जो हिंदी जगत् के सामने आया। इस संग्रह में 'बरसात अब भी आती है' शीर्षक से लगभग 20 कहानियाँ, 71 कविताएँ और एक लघु उपन्यास 'सोया हुआ जल' संग्रहीत है।

'मौत की आँखें', 'क्षितिज के पार' 'जिंदगी और मौत' जैसी कहानियाँ, जिनको

सर्वेश्वर ने विश्वविद्यालय जीवन में लिखा था, वे भी इस संग्रह में आ गई हैं। कहना न होगा कि यह कृति सर्वेश्वर के कवि और कथाकार दोनों ही रूपों के विश्वसनीय मुक्चे का प्रमाण प्रस्तुत करती है। सर्वेश्वर के इस संग्रह की कविताओं में उनके सूजन का प्रालगत दुख-दर्द, प्रेम, निराशा और अवसाद के स्वरों का संगीत तो है ही. साथ ही उनकी सौंदर्यानुभूति को व्यक्त करती हुई मानस-व्यया, अकेलेपन की अनुभूति और इसी से संबंधित अनेक भावों की अभिव्यक्ति हुई है। कवि ने इस संग्रह की कुछ कविताओं में निजी वेदना को समाज की वेदना से मिलाकर भी व्यक्त किया है। कवि की चेतना व्यष्टि से समष्टि की ओर प्रवाहमान हुई है। कवि ने व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों को पूरी ईमानदारी से अपने काव्य का प्रतिपाय बनाया है। यही कारण है कि ये कविताएँ सीधे पाठक की चेतना में गहरे उतर कर उसे गहरे स्तर तक प्रभावित करती हैं। इन कविताओं में सर्वेश्वर की प्रतिमा की पर्याप्त झलक मिलती है।

बाँस का पुल : सन् 1963 में सर्वेश्वर का दूसरा काव्य संग्रह 'बॉस का पुल' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल 40 कविताएँ हैं। सर्वेश्वर की इन कविताओं में भी प्रेम, दर्द, निराशा और अकेलेपन की अनुभूति है। इस संग्रह में कुछ ऐसी कविताएँ संकलित हैं जो सर्वेश्वर के प्रकृतिबोध को व्यक्त करती हैं। इन कविताओं में मनःस्थितियों के जीवंत चित्र कवि ने खींचे हैं। इस संग्रह की कुछ कविताओं में सर्वेश्वर ने मध्यवर्गीय जीवन के त्रासद-संदर्भो, अनिश्चय, परिवेशजनित, विसंगतियों व समसामयिक प्रश्नों को उठाया है। मध्यवर्गीय जीवन की नीरसता, विवशता, आर्थिक दबाव व दाम्पत्य-संबंधों के यथार्थ चित्र कवि ने खींचे हैं।

एक सूनी नाव *:* सन् 1966 में सर्वेश्वर का सबसे महत्त्वपूर्ण काव्य-संग्रह

'एक सूनी नाव' का प्रकाशन हुआ। सर्वेश्वर ने 1963 से 1966 के मध्य जो कविताएँ लिखीं, वे इसमें संकलित हैं। सर्वेश्वर की इन कविताओं के संदर्भ में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि इनमें मात्र दर्द, और अवसाद का ही चित्रण नहीं है, बल्कि कवि ने इनमें आस्था, संकल्प और जिजीविषा के गहरे स्वर भी भरे हैं।

सर्वेश्वर इस तथ्य से भली-भाँति अवगत थे कि यथार्थ चित्रण के नाम पर सामाजिक विसंगतियों का रोना रोकर ही साहित्यकार अपने दायित्व बोध की पूर्ति नहीं कर सकता। निराशा, जड़ता और दुर्बल मानसिकता से ग्रस्त समाज को जिजीविषा और उच्चकोटि की संकल्पशक्ति से ही जाग्रत किया जा सकता है। इस संग्रह की कविताओं के माध्यम से कवि ने समाज में आस्था, संकल्पशक्ति और प्राण-शक्ति का संचार करने का प्रयास किया है। इसी कारण से इस संग्रह की कविताओं में जीवंतता आ गई है। इनमें कवि ने अपने सूनेपन में भी अकेली नाव से ही सारे

परिवेश और समकालीन जीवन-संदभों का जीवंत चित्र खींचा है।

गर्म हवाएँ : सन् 1969 में सर्वेश्वर का चौथा महत्त्वपूर्ण काव्य-संग्रह 'गर्म हवाएँ प्रकाशित हुआ। इस समय तक सर्वेश्वर की काव्य-संवेदना का काफी विस्तार हो चुका था। उनका चिंतन अधिकाधिक यथार्थपरक हो चुका था। समकालीन परिवेश ने उनके रचनाकार मस्तिष्क को बहुत गहरे तक प्रभावित किया। यही कारण है कि सर्वेश्वर ने समकालीन संदभों का चित्रण इस संग्रह की कविताओं में किया है। इनमें देश, संसद, लोकतंत्र, महानगर, विप्लव, बीमारी, विद्रोह, प्रेम, सौंदर्य, आत्मीयता, विवशता और मनुष्य की बढ़ती हुई पाशविकता के खुले और यथार्य चित्र मिलते हैं।

कुआनो नदी: सन् 1973 में 'कुआनो नदी' नामक काव्य-संग्रह का प्रकाशन हुआ। इस संग्रह में सर्वेश्वर की कुछ लम्बी कविताएँ भी संकलित हैं। यह मुख्यतः ग्रामीण स्थिति, संवेदना और सत्संबंधी संदर्भो की कविता है। इसमें गाँव, कस्वा और नगर तीन संस्कृतियों के चित्र मिलते हैं 'कुआनो नदी' 'कुआनो नदी के पार' और 'कुआनों नदी' खतरे का निशान ये तीन खंड सांस्कृतिक प्रक्रिया के धोतक हैं। आज के सांस्कृतिक परिवेश, नगरीय जीवन और नगरीकरण की प्रक्रिया में बढ़ती हुई कृत्रिमताओं और विकृतियों के कारण मूल संवेदना अर्थात् ग्राम्य-संवेदना का खतरे के निशान तक पहुँचना, सर्वेश्वर के क्रांतिकारी होने का आह्‌वान करते हैं।

बकरी : सन् 1974 में प्रकाशित 'बकरी', सर्वेश्वर का प्रथम नाटक है। काव्य की सर्जनात्मक भूमि के साथ-साथ जब नाट्य-रचना के जटिल घरातल पर सर्वेश्वर ने कदम रखा, तो उनके सामने प्रमुख चुनौती थी- हिंदी नाटक और रंगमंच का संपूर्ण इतिहास। किंतु उसकी संभावनाओं की खोज का ज्वलंत प्रश्न भी था, जो उत्तर माँग रहा था। हिंदी नाटक और रंगमंच उस समय 'विशिष्ट वर्ग' 'आभिजात्य सौंदर्य' नियमित प्रेक्षागृह और नए-नए प्रयोगों की आधुनिकता से बंधा हुआ था। हिंदी में मूल समस्या यह थी, कि आम आदमी के लिए समसामयिक नाटक नहीं थे। इतना ही नहीं। हिंदी में जनचेतना को उभारने वाली लोक-भापा और लोकनाट्य-रूप का सौंदर्य भी नहीं था। हिंदी नाटक का प्रेक्षक, जन समूह नहीं, बल्कि समाज का तथाकथित विद्वत समाज है। सर्वेश्वर द्वारा लिखित बकरी नाटक इस दिशा में लिखा गया प्रथम नाटक है। इसमें सर्वेश्वर ने इन आवश्यकताओं को यथा संभव पूरा करते हुए समसामयिक सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को तीखे व्यंग्य से जोड़ कर व्यक्त किया है। इसमें आम आदमी की समस्या को सर्वेश्वर ने उठाया है। समाज के सारे प्रपंचों व दबावों को निरंतर झेलता हुआ आम आदमी टूट चुका है

शोषण के परिणामस्वरूप आम जनता में असंतोष, विद्रोह, खोझ मंझलाहट तो है ही, साथ ही इनसे मुक्त होने के लिए दिया गया एक निर्णय है। राजनीतिक दादों से तथा पंचवर्षीय योजनाओं के नारे उछाल कर आम आद को बहुत छला जा चुका है। उसका संतोष और धैर्य अब जवाब दे चुका है। आम आदमी परिवेशगत जटिलताओं और शोषण से मुक्ति के लिए प्रतिकार को मुद्र में खड़ा है। उसके मुख पर अपनी विजय के प्रति पूर्ण आश्वस्ति का भाव प्रतिविम्विन हो रहा है।

कुछ रंग कुछ गंध : इसका प्रकाशन 1976 में हुआ था। इस संग्रह में सर्वेश्वरको सोवियत यात्रा का विवरण, संस्मरण और कुछ प्रसिद्ध रूसी कवित सर्वेश्वर की का हिंदी अनुवाद सम्मिलित रूप से प्रकाशित हुआ है। सर्वेश्वर ने इसमें अपनी रूप्स यात्रा का अत्यंत मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है।

जंगल का दर्द : सर्वेश्वर का एक अन्य काव्य-संग्रह 'जंगल का दर्द' 1976 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की संपूर्ण कविताएँ दो भागों में विभक्त हैं। प्रथम भाग में जहाँ एक ओर आम आदमी की मुक्ति के लिए मशाल लेकर वे नई क्रांति के लिए प्रयास करते हैं, तो वहीं द्वितीय भाग में यह आंतरिक जंगल की भयावहता में भयाक्रांत हैं। कवि इस भय से मुक्ति पाने हेतु खुद को नए सिरे से तराशना व खगालना चाहता है। देश की तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने सन् 1975 में आपातकाल लागू किया था। आपातकाल में देश की सामाजिक, राजनैतिक और प्रशासनिक स्थितियों का सच्चा चित्र कवि ने खींचा है। कवि स्वयं इन स्थितियों से गहरा संबंध रखता है और साझेदारी व्यक्त करते हुए विभिन्न स्थितियों का सच्चा एवं जीवंत चित्रांकन करने में सफल हुआ है।

भों भों खों खों: बच्चों के लिए सर्वेश्वर द्वारा लिखा यह पहला नाटक है।

इसका प्रकाशन सन् 1975 में हुआ।

लाख की नाक : सर्वेश्वर ने बच्चों के स्वस्थ मनोरंजन और उपयोगी विकास को ध्यान में रखकर यह नाटक लिखा। इसका प्रकाशन सन् 1977 में हुआ।

कल भात आएगा : सर्वेश्वर ने बच्चों की रुचि और रुझान को ध्यान में रखते हुए सन् 1978 में इस नाटक को लिखा। उनके इन नाटकों में न केवल बालकों के स्वभाव, सहज प्रवृत्तियों, आकांक्षाओं और अभिरुचियों की समझ दिखाई देती है, बल्कि कोरे काल्पनिक जगत् से निकल कर सर्वेश्वर बाल नाटकों को उन्हीं के अनुभव, यथार्थ और प्रतिदिन के वातावरण तक ले आते हैं। सर्वेश्वर ने बाल नाटकों में नई शैली का प्रयोग किया है। डॉ. (श्रीमती) गिरीश रस्तोगी के शब्दों में, "अभिव्यक्ति और शैली का वैविध्य। समसामयिक स्थितियों का चित्रण और बाल रंगमंच को नवीन

विकास देने की उत्सुकता उनके बाल नाटकों को उल्लेखनीय बनाती है।"[25]

लड़ाई: सर्वेश्वर का एक अन्य नाट्य-संग्रह 'लड़ाई 1979 में प्रकाशित हुआ। इस नाटक की भूमिका में सर्वेश्वर स्वयं लिखते हैं- "लड़ाई' का जन्म 'बकरी' के कोई 4 साल पहले हुआ था। इसका मूल रूप कहानी का है, जो डॉ. लोहिया के जीवन-काल में उनसे एक बातचीत के बाद लिखी गई थी और उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई थी। कहानी की हिंदी-जगत् में बहुत चर्चा हुई थी। निदेशक ओम शिवपुरी ने इस कहानी को अपनी देख-रेख में मंच-प्रस्तुति के योग्य बनवा लिया और उनके ही निर्देशन में यह सर्वप्रथम नई दिल्ली के मॉडर्न स्कूल में खेली गई।"[26] इस नाटक के बारे में आगे ये स्वयं लिखते हैं-यह नाटक प्रतिबद्ध नाटक है और वामपंथी विचारों तक उठाने वाली पहली सीढ़ी है। इसे लेखक का पहला नाटक माना जाए और यदि प्रतिबद्ध रंगकर्मियों को सारी जरूरत इससे पूरी न पड़ती हो तो उसके लिए लेखक को क्षमा किया जाए।[27]

अंधेरा पर अंधेरा : सन् 1980 में सर्वेश्वर की कहानियों का यह संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें संग्रहीत कहानियों की संख्या 17 है। इस संग्रह की कहानियों की चर्चा करते हुए विजय देव नारायण साही लिखते हैं- "शिल्प की नवीनता के बावजूद सर्वेश्वर की कहानी में जो महत्त्वपूर्ण चीज है, वह अनुभूति की सघनता है। "नया मुहावरा, वही साहित्य और हमारी मनुष्यता में कुछ जोड़ता है। हाँ, वह अपनी ओर कम आकर्षित करता है, जिस अनुभूत संवाद से वह उपजा है। सर्वेश्वर की इन कहानियों में यह बात सबसे महत्त्वपूर्ण है।"[28]

अब गरीबी हटाओ: सर्वेश्वर का एक और नाटक-संग्रह 'अब गरीबी हटओ' सन् 1981 में प्रकाशित हुआ। यह 'उस जन के समर्थन का नाटक है, जो सदियों से आज तक एक व्यापक अपमान और शोषण का शिकार बना हुआ है। यह नाटक उसकी आकांक्षाओं और घुटन को, उसकी यातना और उसके संघर्ष को उस चट्टान के नीचे दिखाने की कोशिश करता है, जो हर बार व्यवस्था की सुरक्षा के नाम पर उसके ऊपर रख दी जाती रही है। उस चट्टान के नीचे से कैसे मानवीय संकल्प का बिरवा तिरछा होकर जीवन की रोशनी की खोज के लिए निकलता रहा है यह इसमें दिखाने का प्रयास किया गया है।"[29]

खूंटियों पर टेंगे लोग : यह सर्वेश्वर का अंतिम काव्य-संग्रह है जो 1982 में प्रकाशित हुआ। इस काव्य-संग्रह पर सर्वेश्वर को मरणोपरांत साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत होने का गौरव भी मिला। सर्वेश्वर के इस संग्रह की कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें जनता को केन्द्रीय भूमिका में प्रतिष्ठित किया है। इसके साथ ही साथ कवि उससे जुड़ने, संबोधित करने तथा उसे कर्म के लिए प्रेरित करने का

प्रयास करता है।

सर्वेश्वर की परवर्ती कविताओं में यह विशेष प्रकार का दायित्व बोध अत्यंत दृढ़ और स्पष्ट होता गया है। सर्वेश्वर ने इस हेतु भाषा और कथन का अपना एक अलग मुहावरा भी विकसित कर लिया था। इस मुहावरे को समर्थ बनाने और उसकी मारक क्षमता की परिधि बढ़ाने की कोशिश भी सर्वेश्वर करते हैं। सर्वेश्वर की संवेदना के विस्तार को रेखांकित करने वाले इस संग्रह की कविताओं में 'फसल', उम्र 'ज्यों-ज्यों बढ़ती है, दस्ताने, जूता, आहित्सा मत चलो, आपातकाल, प्रौढ़ शिक्षा, अब मैं सूरज को डूबने नहीं दूँगा-प्रमुख हैं।

चरवे और चरखे : 1986 में सर्वेश्वर का 'चरचे और चरखे' नामक एक संकलन प्रकाशित हुआ। 'दिनमान' में 'चरचे और चरखे' नामक स्तम्भ में सर्वेश्वर की लिखी जाने वाली टिप्पणियाँ तथा जन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित समीक्षाओं और फुटकर लेखों को इस संकलन में स्थान मिला है। इसमें सर्वेश्वर के पत्रकार-जीवन की वे महत्त्वपूर्ण टिप्पणियों, समीक्षाएँ और लेख सम्मिलित हैं, जिसमें तत्कालीन सामाजिक समस्याओं से प्रश्नाकूल मन की पीड़ा, राजनैतिक और सामाजिक विसंगतियों पर पैने व्यंग्य, कला-नृत्य, रंगमंच तथा संस्कृति संबंधी टिप्पणियों में गहरा सौंदर्य-बोध दिखाई देता है। इन रचनाओं में युग-जीवन के हर स्पंदन के साथ सर्वेश्वर के गहरे तादात्म्य को अनुभव किया जा सकता है। अपने समय की प्रत्येक हलचल से सर्वेश्वर का सीधा सरोकार रहा था। हिंदी साहित्य की सेवा सर्वेश्वर ने अनेक विधाओं के माध्यम से की। इसी के साथ एक पत्रकार के रूप में भी 'दिनमान' में साहित्य के प्रमुख मुद्दों, साहित्यिक एवं राजनैतिक आंदोलनों और महत्त्वपूर्ण प्रसंगों पर सर्वेश्वर निरंतर जुझारू ढंग से लिखते रहे।

पत्रकार के रूप में दो टूक शब्दों में बोलने का साहस भी उनमें था। इस संबंध में केशव चंद्र वर्मा का कथन है- "सर्वेश्वर ने पिछले वीस वर्षों में बहुत लिखा, बहुत तरह की चीजें लिखीं। उन्होंने 'दिनमान' के साहित्य, संगीत और कला के स्तम्भों में बहुतेरी बातें उठाई। उनके द्वारा लिखा हुआ स्तम्भ 'चरचे और चरखे' व्यंग्य से भरा हुआ और तिलमिलाने वाला लेखन होता था। इस स्तम्भ में सर्वेश्वर ने देश में घट रही हर स्थिति पर अपनी बेलाग टिप्पणियाँ की थीं। अक्सर 'दिनमान' की संपादकीय नीति उसी 'चरचे और चरखे' को पढ़ कर जानी जाती थी।"[30]

सर्वेश्वर का व्यक्तित्व अनूठा था। उन्हें अपने पर पूरा विश्वास था। अपनी कलम की ताकत से वे अच्छी तरह परिचित थे। यही कारण था कि भौतिक सुख- सुविधा एवं पैसा इत्यादि भी उन्हें अपनी ओर झुका नहीं पाए। पूरे जीवन काल में निर्भय होकर सत्य की रक्षा में स्वयं प्राणप्रण से लगे रहे। केशवचंद्र वर्मा के ही शब्दों

में-"वे कलम पर और सिर्फ कलम पर ही अपने पूरे व्यक्तित्व को दाँव पर लगाते थे। सर्वेश्वर ने एक बार घूमते हुए मुझसे कहा था कि अगर मुझे यह अधिकार मिल जाए कि में जिसे गलत समझता हूँ, उसे एक बेंत लेकर जब चाहूँ पीट सकता हूँ, तो मैं लिखना बंद कर दूँगा, लेकिन मेरे पास यह अधिकार नहीं है, इसलिए मुझे लिखना ही पड़ता है और लिखता ही रहूँगा। सर्वेश्वर सिर्फ पीटते ही नहीं थे, घाव पर मलहम भी खूब सहला कर लगाते थे। एक सहानुभूति का स्वर तमाम तकलीफों से मुक्ति का एहसास दुखी मन के पाठक को दे जाता था।"

जीवन-संघर्ष, शिक्षा, व्यक्तित्व विधायक गुण और रचनाओं के ऐतिहासिक विवेचन से सर्वेश्वर के बहुआयामी व्यक्तित्व के कई महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। जिस परिवेश में सर्वेश्वर का बचपन बीता था, उसमें उनकी संवेदनशीलता को पोषण मिलता रहा। संवेदनशीलता की परिधि का विकास निरंतर होता रहा। यह उनकी साहित्य-यात्रा से सिद्ध होता है। उनका परिवार भी साहित्य-प्रेमी था। साहित्य-लेखन की प्रेरणा उन्हें प्रारंभ से ही मिलती रही। सर्वेश्वर यदि जीवन के विस्तार से रागात्मक संबंध स्थापित करने में सक्षम हो सके, तो इसका श्रेय उनकी संवेदनशीलता को जाता है। अपनी बहुमुखी प्रतिभा और बहुआयामी लेखन से उन्होंने हिंदी साहित्य की अटूट सेवा की। बाल्यावस्था में माता-पिता द्वारा प्रदत्त संस्कारों ने सर्वेश्वर को सामान्य से सामान्य व्यक्ति के दुख-दर्द में सम्मिलित होना सिखाया। अपने परिवेश में घटित होने वाले शोषण और अन्याय के विरुद्ध वे सदैव क्रांतिधर्मी विरोध करते रहे। यद्यपि इस विरोध में भी उनकी रचनात्मकता निहित होती थी। उनमें मानवीय गुण अधिकाधित मात्रा में विद्यमान थे। निर्धनों एवं असहायों की सहायता के लिए सब कुछ समर्पित करने को सदैव उद्यत रहते थे।

लक्ष्मीकांत वर्मा उनके मानवीय गुणों की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं- "उनके पास एक अज्ञात सूक्ष्म तराजू था, जिस पर वह अपने निजी, पारिवारिक और मित्र प्रधान तत्त्वों का संदर्भ विवेचन कर लेते थे। इसीलिए सर्वेश्वर के व्यवहार में कभी दोहरापन नहीं आया। वह जिससे नाराज हुए, तो हो गए, फिर उसमें कोई छिपाव, दुराव नहीं रहता था। लेकिन एक विराट् मानवीय स्तर पर वह शत्रु के लिए भी अपना रक्त तक देने को तैयार रहते थे।"

सर्वेश्वर का संपूर्ण व्यक्तित्व और लेखन, जनविरोधी व व्यक्ति-केंद्रित विचारधारा और राजनीति के क्षेत्र में निरंकुशता व तानाशाही के खिलाफ बराबर संघर्ष करने वाला रहा है। सर्वेश्वर के भीतर एक ऐसा रचनाकार था, जो जनता से नम्रतापूर्वक सीख कर जनता को लौटा देने की नीति पर बराबर चलता रहा। उन्होंने अपनी कहानियों, नाटकों, कविताओं, उपन्यासों और पत्रकारिता के माध्यम से इस नीति का

पूर्णतया पालन किया।

संदर्भ

1. साहित्य सहचर हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 3
2. वही, पृ. 3
3. वही, पृ. 3
4. आजकल सितम्बर 1980, पृ. 8
5. वही, पृ. 8
6. यही, पृ. 8
7. मुक्ति प्रवेशांक जुलाई 1984, पृ. 114
8. आजकल : सितम्बर 1980, पृ. 12
9. वही, पृ. 12
10. मुक्ति प्रवेशांक: जुलाई 1984, पृ. 9
11. वही, पृ. 10
12. यही पृ. 9
13. वही, पृ. 9
14. वहीं, पृ. 9
15. वही, पृ. 91
16. वही, पृ. 92
17. आजकल सितम्बर 1980, पृ. 9
18. वही, पृ. 10
19. वही, पृ. 10
20. वही, पृ. 10
21. मुक्ति प्रवेशांक: जुलाई 1984, पृ. 135
22. आजकल सितम्बर 1980, पृ. 10
23. यही, पृ. 10
24. दूर्वादल: जनवरी-मार्च 1982, पृ. 10
25. लड़ाई (भूमिका): सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 1
26. वही, पृ. 1
27. अंधेरे पर अंधेरा (भूमिका) सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 1
28. अब गरीबी हटाओ (भूमिका) सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 1
29. मुक्ति प्रवेशांक: जुलाई 1984, पृ. 36
30. दही, पृ. 39
31. वही, पृ.

अध्याय-2

सर्वेश्वर का नाट्य-साहित्य

सर्वेश्वर मूलतः कवि थे। कविता कर्म का सम्यक् निर्वहन करते हुए सर्वेश्वर जब नाट्य-रचना के जटिल घरातल पर उतरे, तो उनके समक्ष सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न हिंदी नाटक और रंगमंच के संपूर्ण इतिहास और उसकी खोज का था। हिंदी-गद्य की अन्य विधाओं की भाँति ही नाट्य विद्या का प्रारंभ भी आधुनिक काल में ही हुआ। हिंदी साहित्य में इससे पूर्व नाटकों का अभाव रहा है। डॉ. रामचंद्र तिवारी ने 14वीं सदी से लेकर 19वीं सदी के मध्य तक के नाटकों की स्थिति पर विचार करते हुए लिखा है कि "इस समय जो नाटक-कृतियों मिलती हैं, वे मृतवत् हैं उनमें संपूर्ण नाटकीय तत्त्व उपलब्ध नहीं होते। वस्तुतः ये लोकधर्मी नाट्य परम्पराएँ हैं, जो पूरे भारतवर्ष में अनेक नाम रूपों में व्याप्त रही हैं। उत्तर प्रदेश में 'लीला', 'रास और नौटंकी', मध्य भारत में 'माच', राजस्थान में 'ख्याल' बंगाल में 'जावा', बिहार में कीर्तनियों, महाराष्ट्र में 'ललित' और 'दशावतार' तथा दक्षिण भारत में 'यक्षगान' के रूप में लोकनाट्य परंपरा बराबर जीवित रही है।"[1]

तात्पर्य यह कि आधुनिक काल से पूर्व नाटकों के नाम पर ये नाट्य परंपराएँ ही जीवित थीं। जनता इन लोक नाट्यों के माध्यम से अपनी धार्मिकता और वीर- पूजा की प्रवृत्ति को रास लीला, राम लीला, स्वांग आदि के अभिनयों द्वारा संतुष्ट करती थी। भारत में नवचेतना का उदय तब हुआ, जब भारत का शिक्षित एवं प्रबुद्ध वर्ग अंग्रेजी साहित्य के संपर्क में आया। अपने मनोरंजन के लिए अंग्रेजों ने ईस्ट इंडिया के समय में ही कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, पटना आदि बड़े-बड़े नगरों में अभिनयशालाओं की स्थापना की थी। कहना न होगा कि "इन अभिनय शालाओं ने ही भारतीय शिक्षित समुदाय का ध्यान नाट्यकला की ओर आकृष्ट किया।[2]

हिंदी-साहित्य में आधुनिक हिंदी-गद्य की सभी विद्याओं का प्रारंभ भारतेंदु

हरिश्चंद्र से माना गया है। हिंदी-नाटकों का भी प्रारंभ भारतेंदु से ही माना गया है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार "विशुद्ध नाटक रीति का ध्यान रखकर हिंदी का सर्वप्रयम मौलिक नाटक 'नहुष' भारतेंदु के पिता गोपाल चंद्र (गिरधर दास) द्वारा सन् 1959 ई. में लिखा गया, किंतु भारतेंदु के साथ हिंदी नाटकों का भाग्योदय हुआ।

सर्वेश्वर के नाट्य-लेखन शुरू करने से पूर्व नाट्य-लेखन की समृद्ध परंपरा हिंदी में आगे बढ़ चुकी थी। हिंदी में भारतेंदु और जयशंकर प्रसाद जैसे नाटककार श्रेष्ठ नाटकों की रचना कर चुके थे। हिंदी-नाटकों के विकास में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने नाटकों की माध्यमगत और कलागत विशेषताओं को पूर्णरूपेण आत्मसात करने हेतु सामूहिक और योजनाबद्ध ढंग से एक संपूर्ण आंदोलन की तरह कार्य किया। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से वे अपने युग के लेखकों को संबोधित करते रहते थे। भारतेंदु ने न केवल हिंदी नाटकों की युगीन समस्याओं, राजनैतिक, सामाजिक स्थितियों, राष्ट्रीय-चेतना, जन जागृति और मनुष्य की संवेदना से संपृक्त किया, बल्कि नाटक और रंगमंच के अंतर्संबंधों और अनिवार्यता को समझते हुए नाट्य-रचना के साथ ही साथ उनको मंच पर प्रस्तुत करने का आयोजन भी किया।

भारतेंदु नई नाट्य परंपरा, भिन्न नाट्य शिल्प तथा हिंदी रंगमंच की स्वतंत्र विकास परंपरा के प्रति आजीवन संघर्षशील रहे। भारतेंदु के नाटकों में जनजीवन के प्रति गहरी पैठ, अत्यंत सतर्क दृष्टि और संवेनशीलता दिखाई देती है। इसी कारण इनके नाटकों में ऐसी नाट्य-भाषा और ऐसे तिलमिला देने वाले व्यंग्य हैं, जो लोकमानस से सीधे टकराने की शक्ति रखते हैं। इन नाटकों में भारतेंदु की अद्‌भुत जीवनी शक्ति और जिंदादिली का प्रमाण है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के बाद उनके परवर्ती नाटककारों में जयशंकर प्रसाद का नाम अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हिंदी नाट्य-साहित्य को प्रसाद ने काव्यात्मक वैभव, ऐतिहासिकता और आधुनिकता, चारित्रिक वैशिष्ट्य व साहित्य-गौरव तो प्रदान किया, किंतु उन्होंने रंगमंच को नाटक के अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार नहीं किया। प्रसाद रंगमंच को एक आनुषंगिक पक्ष के रूप में ही स्वीकार करते हैं। भारतेंदु और उनके काल के नाटककारों ने हिंदी रंगमंच की दिशा में जो प्रयास किए थे, वैसा कोई प्रयास प्रसाद या उनके काल के नाटककारों की ओर से नहीं हुआ। वस्तुतः प्रसाद के नाटकों में उनके युग और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ज्यादा है। प्रसाद के काल में हिंदी का अपना कोई रंगमंच स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में नहीं आ सका।

स्वतंत्रता के बाद से ही हिंदी-नाटकों में परिवर्तन और विकास के लक्षण

दिखाई पड़ते हैं। हिंदी नाट्य-साहित्य में भले ही हिंदी-रंगमंच की कोई स्वतंत्र सत्ता न बन सकी हो, किंतु स्कूल, कॉलेज, प्रतियोगिताओं, समारोहों के स्तर पर नाटक मंच से जुड़ चुका था। इतना ही नहीं, अपने आस-पास के बदलते हुए परिवेश, जीवन-मूल्यों और समसामयिक अनुभवों को नाटककारों ने नाटक की सर्जनात्मकता के साथ प्रस्तुत करने और संप्रेषित करने की अच्छी और सार्थक शुरुआत की।

इस दौर में जगदीश चंद्र माथुर, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल एवं विपिन कुमार आदि ने अनेक श्रेष्ठ नाटक लिखे। इस काल की चर्चित नाट्य-रचनाओं में पहला राजा, 'अन्धायुग', 'तीन आँखों वाली मछली', 'अंघ कुओं', 'मादा कैक्टस', आषाढ़ का एक दिन, 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे', 'अपाहिज' और 'शुतुरमुर्ग' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः हिंदी-साहित्य का यह दौर साहित्य की अन्य विधाओं में भयंकर रूप से व्याप्त अनास्था और अराजकता के माहौल में पनप रहा था। हिंदी का नाट्य-साहित्य भी इससे बचा नहीं या। यही वह समय था, जब हिंदी-नाटक और रंगमंच विशिष्ट वर्ग, आभिजात्य सौंदर्य बोध, 'नियमित प्रक्षागृह' आदि नए-नए प्रयोगों की आधुनिकता से बँधा हुआ था। परंतु हिंदी नाटकों की मुख्य समस्या यह थी कि हिंदी में आम आदमी का समसामयिक नाटक नहीं था। जो जनमानस की जन-चेतना को उभार सके, ऐसी लोकभाषा और लोक-नाट्य-रूप के मुक्त सौंदर्य का अभाव था। इतना ही नहीं, हिंदी नाटक के प्रेक्षक जनसमूह का भी सर्वथा अभाव था।

ये कुछ ऐसे ज्वलंत प्रश्न थे, जो उस समय, अर्थात् 1970 के बाद अस्तित्व में आए। सर्वेश्वर ने इन्हीं प्रश्नों को दृष्टि में रखकर 'बकरी' नाटक की रचना की। उस समय नाट्य-साहित्य में डा. लक्ष्मी नारायण लाल, मुद्राराक्षस, रमेश बक्शी जैसे नाटककार नाटक लिख रहे थे। ये नाटककार अपने नाटकों में पश्चिमी दुनिया के रूपवादी शिल्प और महानगरीय-बोध की लगातार पुनरावृत्ति कर रहे थे। इस पुनरावृत्ति का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि हिंदी नाटक एक विशेष प्रकार की बौद्धिकता में बँधकर बौद्धिक वर्ग की वस्तु बनता जा रहा था।

ऐसी स्थिति में जब सर्वेश्वर का 'बकरी' नाटक आया, तो उसने हिंदी नाटकों को एक नया मुहावरा दिया। उसे नये नाटकीय प्रयोग और जन-जीवन की सहजता से युक्त किया। इसमें बौद्धिकता से मुक्ति शिल्प की सहजता और खुलापन, आम आदमी का मुहावरा और अपनी जमीन के पारंपरिक नाट्य-रूप मिलते हैं।

'बकरी' नाटक की भूमिका में स्वयं सर्वेश्वर स्पष्ट लिखते हैं, कि "यह नाटक न लिखा जाता-

1. यदि हिंदी में कोई ऐसा नाटक होता, जिसने जन-चेतना को लोकभाषा और लोकरूपों के माध्यम से सामाजिक अन्याय के साथ जोड़ने का एक नया व्याकरण देखने को मिलता।

2. यदि हिंदी के तवाकथित श्रेष्ठ नाटक बड़े प्रेक्षागृहों, भारी तामझाम और विद्वत प्रेक्षक समाज के मुहताज न होते।

3. यदि हिंदी के नाटककार यश-प्रार्थी न होकर आम आदमी की पीड़ा, आम आदमी की जबान में, आम आदमी के बीच में ले जाना हिंदी रंगमंच के लिए आज अनिवार्य मानते।""

नाटक के लक्ष्य के विषय में भी उनकी दृष्टि अत्यंत साफ है- "यह नाटक जितना ही गाँवों, कस्बों, मजदूर-बस्तियों और स्कूल कॉलेजों में खेला जाएगा, उतना ही इसका उद्देश्य पूरा होगा। सर्वेश्वर का यह वक्तव्य वस्तुतः उनके अपने विकास- क्रम और हिंदी के तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में सामूहिक आत्मावलोकन का उत्तरदायित्वपूर्ण बेचैनी का स्वर है। यद्यपि इसमें गर्वोक्ति जैसे भाव की प्रतीति होती है, किंतु यथार्थ में ऐसा नहीं है।

"भारतेंद्कालीन हिंदी नाटक जिस प्रकार सामाजिक आंदोलनों के अंग के रूप में उभर कर सामने आए थे और तत्कालीन वर्तमान में फिर जैसे नाटकों की सीधी भूमिका बन रही थी, इस बीच के लंबे अंतराल में साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ही नाटक की भी एक अलग 'स्वायत्त' दुनिया खड़ी हो गई। विधागत वैशिष्ट्य के नाम पर जो तथाकथित रंगमंचीय प्रयोगों के दौर चले, वहाँ तो वह और अनेक जयाबदेहियों से मुक्त हो गया था। ऐसे में इस क्षेत्र में सर्वेश्वर का आना एक ऐतिहासिक घटना की तरह है। सर्वेश्वर न केवल रूमानियत और अधकचरी 'एब्सडिटी' के जंगल से उबर कर साफ-सुचरी बात रखते हैं, बल्कि अपने समग्र रचना-कर्म की तरह रंग-कर्म को भी अपनी सामाजिक चिंता से पूरी प्रतिबद्धता के साथ लैस करते चलते हैं। वह पारंपरिक अर्थ में रंगकर्मी नहीं हैं।

समय और समाज की चिंता ने उनमें एक विनम्र जागरूकता पैदा की है। एक तरफ उन्होंने अपने समय के समर्थ रंगकर्मियों से संपर्क और एक तरफ से सामूहिक भागीदारी का प्रयास किया है, तो दूसरी तरफ दर्शकों से भी सीधे संवाद की प्रक्रिया शुरू करने का श्रेय हिंदी में उन्हीं को जाता है। सर्वेश्वर ने न केवल नाटक को संगीत-नृत्य की विभिन्न लयों और धुनों से जोड़ा, बल्कि परंपरागत संगीत-नृत्य और अभिनय के संतुलित कल्पनाशील प्रयोग से विशाल दर्शक समूह को प्रभावित भी किया। इसलिए समकालीन सत्य को पारंपरिक नाट्य के माध्यम से प्रस्तुत करने में और एक सही, अनिवार्य दिशा के अन्वेषण और उसकी प्रतिष्ठा में सर्वेश्वर का

विशेष स्थान है। उनके नाटकों में 'बकरी', 'लड़ाई', 'अब गरीबी हटाओ' के साथ- साथ कुछ बाल नाटक भी 'अब भात आएगा', 'भों-भों, खों-खों, 'लाख की नाक' महत्त्वपूर्ण हैं।"

नाटकों की विषयवस्तु

नाटक का यह प्रमुख तत्त्वय विषयवस्तु कहलाता है, जिसके आधार पर संपूर्ण नाटक का भव्य प्रासाद खड़ा होता है। नाटक की रचना विषयवस्तु के अभाव में संभव नहीं है। इसी के आधार पर नाटक के अन्य तत्त्वों का विकास होता है। किसी भी नाटक की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसकी विषयवस्तु की घटना में प्रवाह, गति और रोचकता का गुण समाविष्ट हो। नाटक की विषयवस्तु के संयोजन की मूल दृष्टि भले हो बौद्धिक हो, परंतु उसका आधार जितना ही जीवन के लिए प्रासंगिक होता है, नाटक उतना ही जीवंत हो उठता है।

'बकरी' नाटक की भूमिका में कविता नागपाल इसी की ओर संकेत करती हुई कहती हैं-"विषयवस्तु के स्तर पर नाटक जनता और उसकी समस्याओं से कटता हुआ एक खास मध्यवर्गीय तिलिस्म में कैद होता नजर आ रहा है। रंगमंच में सक्रिय ये प्रवृत्तियों जनता को उसकी सही भूमिका के एहसास से अलग तो रखती ही है, साथ ही मध्यवर्गीय हितों को भी मध्यवर्गीय जनता के हितों से जुदा करके, महज एक तथाकथित भद्रशिल्प के ताने-बाने में समेट देती हैं।"

समसामयिक समस्याएँ

विषयवस्तु का मूल आधार सर्वेश्वर के भीतर का रचनाकार है, जो अत्यंत संवेदनशील और जागरूक है। परिवेश में घटित प्रत्येक घटना उन्हें गहरे तक प्रभावित करती है। उनके चिंतन का दायरा अत्यंत विस्तृत था। उनके नाटकों में समसामयिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है। सर्वेश्वर ने समसामयिक समस्याओं और परिवेशजनित विसंगतियों और विद्रूपताओं को देखकर आम आदमी के संघर्ष को रूपायित करने के लिए ही वर्तमान घिनौनी राजनीति, टूटते जीवन-मूल्य, बिगड़ी हुई व्यवस्था, गरीबी और बेरोजगारी-सभी को अपने नाटक का मूल विषय बनाया। सर्वेश्वर एक ऐसे नाटककार थे, जो समाज से गहरे अर्थों में सम्पृक्त थे। समाज की प्रत्येक हलचल से सर्वेश्वर सीधा सरोकार रखते हैं। उनके अधिकांश नाटक राजनीतिक हैं। सदियों से उत्पीड़ित, शोषित, अपमानित जनता की मुक्ति की चिन्ता ही इन नाटकों में प्रमुखता से प्रकट हुई है। यह चिंता उनके बाल नाटकों में भी देखी जा सकती है। राजनीतिक छद्म द्वारा किस प्रकार जन मानस को छला

जा रहा है. इसका यथार्य रूप इन नाटकों में वर्णित है। इनमें सामान्य जनता का संकट, उसकी जिजीविषा, उसकी चेतना, उसका संघर्ष सब कुछ उजागर करने का सफल प्रयास सर्वेश्वर ने किया है।

गाँधी के नाम पर भोली-भाली जनता को किस प्रकार हमारे राजनेता मूर्ख बनाते हैं, किस प्रकार गरीबी हटाने के नारे लगाए जाते हैं, पंचवर्षीय योजनाओं क बनाते है किस प्रकार किसानों को मोहरा बनाकर राजनीतिक दल अपना जल सीधा करते रहे हैं, इसका यथार्थ चित्र इन नाटकों में खींचा गया है। आजादी के इतने बाद भी आम आदमी की स्थिति में कोई आमूलचूल परिवर्तन नहीं हुआ। आजादी के पूर्व भी यही वर्ग सर्वाधिक शोषण का शिकार था और आजादी के बाद। भी उसका शोषण बदस्तूर जारी रहा। अनवरत हो रहे शोषण के परिणामस्वरूप आम आदमी टूटता चला गया। वह व्यवस्था से अकेले जूझ रहा है। अपने अस्तित्व को लड़ाई अकेले लड़ रहा है।

सर्वेश्वर के नाटकों का कव्य उनके काव्य-संसार से भिन्न नहीं है। अपने नाटकों के माध्यम से वे सीधे आम आदमी से जुड़ जाते हैं। नाटक को माध्यम बनाकर वे आम आदमी से सीधा सरोकार रखते हैं। कविता के माध्यम से सर्वेश्वर जो कुछ संप्रेषित करना चाहते हैं, नाटकों के माध्यम से वह जन सामान्य तक सहज ढंग से प्रस्तुत और संप्रेषित हो जाता है। इस बारे में सर्वेश्वर स्वयं स्वीकारते हैं- "कविता लिखते समय में अकेला होता हूँ। कहानी लिखते समय लगता है कि मैं अपने घर-बार और परिचित मित्रों के बीच में खड़ा हूँ। नाटक लिखते समय लगता है कि में एक भीड़ का हिस्सा हो गया हूँ, जहाँ किसी भी समय पत्थर भी मिल सकता है और कंधों पर भी उठाया जा सकता है। उस भीड़ से टकराने का वृता मुझे उसी अकेलेपन से मिलता है, जिसे में कविता में बुनता हूँ या उन्हीं आत्मीयों और स्वजनों से, जो कहानी में मुझे घेरते हैं। इसीलिए नाटक में कविताओं के उस रूप का मैं इस्तेमाल करता हूँ, जो भीड़ की हो सकती है, यानी गाई जा सकती है और कहानी के उस रूप की, जो एक मुँह से दूसरे मुँह तक तैर सके। रचनात्मक स्तर पर नाटक बहुत संतुष्टि देता है।""

सम्प्रेषण जनित सुख के स्तर पर नाटक से मिलने वाले इसी संतोष की व्याख्या एक दूसरे संदर्भ को भी उद्घाटित करता है- "दूसरा बड़ा संतोष नाटक से यह मिलता है कि वह अपनी रचना में तमाम कलाकारों की साझेदारी माँगता है और अपने संप्रेषण में विभिन्न वर्गों व समुदायों के प्रेक्षकों की। नाटक के जरिए आप अपनी बात देश के कोने-कोने तक अन्य विधाओं की तुलना में अधिक आसानी से पहुँचा सकते हैं।""

वस्तुतः आम आदमी की संघर्ष चेतना को उद्घाटित करना ही सर्वेश्वर के संपूर्ण नाटकों के कथ्य का लक्ष्य है।

'बकरी' व्यंग्य द्वारा व्यवस्या विरोध : सर्वेश्वर बकरी की भूमिका में लिखते हैं- "यह नाटक देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति में और अधिक सार्थक हो उठा है और इस स्थिति से टकराने वाली और मुँह चुराने वाली ताकतों का और अधिक ध्रुवीकरण कराता है। गांधीवाद का मुखौटा लगाकर आज भी सत्ता की राजनीति की जा रही है और देश की जनता को छला जा रहा है। लेखक चाहता है कि देश की राजनीतिक स्थिति सुघरे और यह नाटक अपने निहित व्यंग्यार्थ में शीघ्र से शीघ्र असंगत हो जाए।

सर्वेश्वर का यह नाटक भारतीय जनता को मिली आजादी को झूठा एवं मृगमरीचिका सिद्ध करता है। यह कैसी आजादी है, जहाँ चंद सत्ताधारी पूरे देश में अपनी तानाशाही चला रहे हैं? यह आजादी नहीं, अपितु जनता के साथ विश्वासघात है। शासक वर्ग सामंतवाद के बल पर, ग्रामीण जनता पर धर्माधता और अंधविश्वास का कुचक्र लादकर उनका शोषण किए जा रहा है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने इसी शोषण, उत्पीड़न की खोज कर उसे समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। यही इस नाटक का प्रमुख उद्देश्य रहा है। जनता के साथ शासक वर्ग द्वारा की जा रही 'कमीनगी' को भी जनता इस नाटक में देखती समझती है:

"कर्मवीर : कुछ पढ़ा है?

युवक : सोहबत की है, अक्षर कम कमीनगी ज्यादा पहचान लेते हैं।"

जनता की विकसित हो रही इस समझ का शासक वर्ग के पास जवाब भी है-

"सिपाही: ऐसी पहचान का इलाज हमारे पास है।

युवक : इलाज आपके पास हर चीज का है। गरीबी और अन्याय का नहीं बस।"

सर्वेश्वर का यह नाटक आजादी के बाद के विकासशील यथार्थ का जीवंत दस्तावेज है। कविता नागपाल 'वकरी' की विषयवस्तु के संदर्भ में कहती हैं, "व्यवस्था के समकालीन राजनीतिक छद्म और उसके जनविरोधी एवं जनतंत्र विरोधी चरित्र पर प्रहार करता हुआ यह नाटक जनता, विशेषकर ग्रामीण जनता पर लादी गई धमांधता और उसमें होने वाले शोषण-उत्पीड़न का चित्रण करते हुए एक ऐसे गुस्से का रेखांकन करता है, जिसे यदि समग्र यथार्थ से जोड़कर देखा जाए तो यह जनवादी चेतना के प्रसार में सहायक हो सकता है।"

'गांधीवाद का इस्तेमाल' नामक अपने एक लेख में सर्वेश्वर ने अपनी ओर

से 'बकरी' के उद्भव का सूत्र भी दिया है "गांधी के नाम को लेकर सत्ताधीशों द्वारा स्यार्य-साधन और देश की जनता को बेवकूफ बनाने तथा उसका हर तरह से शोषण करने का व्यापार इस हद तक जघन्य रूप धारण करता गया कि तिलमिलाकर इस कलम को 1979 में एक पूरा नाटक लिखना पड़ा। 'चकरी' जो गांधी जी के नाम पर इस देश की गरीब बेजबान जनता के शोषण का दस्तावेज है।

सर्वेश्वर ने 'बकरी' के माध्यम से सत्ता की राजनीति करने बालों पर करारा व्यंग्य तो किया ही है, साथ ही राजनीतिक छद्म का पर्दाफाश भी किया है। 'बकरी' के कथ्य पर हिमांशु रंजन का मत है- "स्वातंत्र्योत्तर भारतीय मानस पर गांधीवाद की जकड़ और खुद गांधीवाद की जड़ में जो भाववादी निष्पत्तियों और उसका पोषण करने वाली धार्मिक, नैतिक रूढ़ियों व अंधविश्वास हैं, उन सबकी चीरफाड़ जितनी बेबाकी से 'बकरी' नाटक में हुई है, वैसी शायद ही अन्यत्र हुई हो। 'बकरी' न सिर्फ गांधी जी के नाम पर इस देश की गरीब बेजुबान जनता के शोषण का दस्तावेज है, बल्कि खुद गांधीवाद के 'खोखलेपन' और 'गरीबी' का कच्चा चिट्ठा है। नाटक में गांधीवाद की व्याख्या के विकृत रूप पर यह कटु व्यंग्य द्रष्टव्य है:

सत्यवीर: गरीबी। (हँसता है)

इस 'बकरी' ने तुझे नहीं सिखाया कि गरीबी केवल मन की होती है, गरीबी केवल विचारों की होती है। जानती है औरत, गांधीजी केवल छः पैसे में गुजर करते थे।""

गांधीवाद की यह विकृत व्याख्या रूपी गरीबी उलट कर आम आदमी को कितनी हताश व पंगु बना देती है और किस प्रकार सत्ताधीशों व शोषकों का औजार बन जाती है, इसका स्पष्टीकरण निम्न वार्तालाप में होता है :

"दुर्जन-किसकी बकरी ?

सिपाही गाँव के हरिजन की।

दुर्जन-नहीं बिल्कुल गलत ।

सिपाही-फिर

दुर्जन-यह गांधी जी की बकरी है।

सिपाही-गांधी जी की?

दुर्जन-हाँ हाँ, महात्मा गांधी की, मोहनदास करमचन्द गांधी।

अच्छा बताओ यह क्या देती है? सिपाही दूध।

दुर्जन-नहीं, कुर्सी, धन और प्रतिष्ठा (कुछ रुककर) अच्छा बताओ यह क्या

खाती है?

सिपाही-घास।

दुर्जन-नहीं, बुद्धि, बहादुरी और विवेक (यह गांधी जी की बकरी है)" सर्वेश्वर का यह नाटक सामाजिक विसंगतियों का पर्दाफास करता है, साथ ही जनता को जागरूक बनाकर सामूहिक संघर्ष की प्रेरणा देता है। यह वर्तमान कुव्यवस्था का यथार्थ चित्रण करने में पूरी तरह सहायक हुआ है।

'लड़ाई' वैयक्तिक संघर्ष की विडम्बना और प्रतिबद्धता: लड़ाई सर्वेश्वर की बहुचर्चित नाट्य-कृति है। वस्तुतः इसका मूल स्वरूप कहानी का है। ओम शिवपुरी ने इसकी चर्चा के कारण ही अपने निर्देशन में इस कहानी का मंचन किया था। इसी कहानी को बाद में सर्वेश्वर ने रेडियो नाटक के रूप में तैयार किया। आकाशवाणी के सभी केंद्रों और कई भाषाओं में इसका प्रसारण हुआ। रंग कर्मियों के विनम्र अनुरोध पर बाद में कुछ परिवर्तनों के साथ यह मंचीय नाटक के रूप में भी सामने आया। इस नाटक से सम्बद्ध विविध तथ्यों को स्पष्ट करने का एक मात्र उद्देश्य यह है कि कहानी से रेडियो नाटक और तत्पश्चात् मंचीय नाटक के रूप में, इस रचना की प्रसिद्धि और अलग-अलग प्रकृति से सर्वथा भिन्न रूप-माध्यमों के, शिल्प से गुजरने में लेखक की मानसिक यात्रा और प्रयास का आकलन किया जा सके।

यह नाटक समसामयिक परिस्थितियों के समक्ष अनेक प्रश्न प्रस्तुत करता है। एकाघ संदर्भों में यह बकरी से मिलता-जुलता नाटक है, किंतु विस्तृत अथों में उससे अधिक व्यापक क्षेत्र और अनुभव को स्पर्श देने वाला नाटक भी है। आजादी के बाद हमारे देश में व्यक्ति कई वर्गों और संस्थाओं में विभक्त हो चुका है। बहुत से मोर्चा पर लड़ने के कारण हमारी शक्ति एक बिंदु पर केंद्रित नहीं हो पाती है। परिणाम निश्चित है-वही ढाक के तीन पात। क्षुद्र स्वाथों के वशीभूत होकर हमने अलग-अलग साँचे निर्मित कर लिए हैं। किंतु यह सब अकारण अथवा आकस्मिक नहीं है। यदि आम आदमी अपने शोषण के विरुद्ध एक मोर्चे पर एकत्र होकर अपनी प्रतिवद्धता नहीं व्यक्त कर पा रहे हैं तो इसका स्पष्ट एवं निश्चित कारण है। सर्वेश्वर जैसे नाटककार यह अनुभव करते हैं कि शासन-व्यवस्था को चलाने वाले भ्रष्ट राज नेताओं ने आपसी साँठ-गाँठ कर ली है। वे आम जनता को कभी भी एक मंच पर एकत्रित ही नहीं होने देते। क्योंकि 'संघ शक्ति कलियुगे' के प्रभाव को वे जानते हैं। आम आदमी को विभाजित करके आपस में लड़ाने के मूल में सारा सामाजिक-राजनैतिक वातावरण है। कुछ ऐसे दल व संस्थाएँ हैं जो लड़ाई की ताकत को लड़ने वाले को उसके संकल्प के मूलाधार को जड़ से नष्ट कर रहे हैं। व्यक्ति, समाज व राष्ट्र तीनों के लिए यह स्थिति अत्यंत भयावह है। अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की

नीति अपनाकर स्वदेशी, जो शासन-व्यवस्था में कुर्सी संभाल रहे हैं, हमारा शोषण कर रहे हैं।

'लड़ाई' नाटक के माध्यम से नाटककार इन स्थितियों का यथार्थ चित्रण करता है। इसी दृष्टि से सर्वेश्वर इसे एक प्रतिबद्ध नाटक मानते हैं- "यह नाटक प्रतिबद्ध नाटक है और वामपंथी विचारों को उठाने वाली पहली सीढ़ी है। यह नाटक दिखाता है कि अकेली लड़ाई समाज और व्यवस्था तोड़ती नहीं, स्वयं गरिमामय होते हुए भी टूट जाती है और सार्थक नहीं रह जाती। इस ट्रेजडी को अनुभव करना संगठित प्रयास की ओर बढ़ना है।""

समाज की विसंगतियों पर व्यंग्य करते हुए सर्वेश्वर कहते हैं- "किसी भी असत्य को बार-बार दोहराते रहो। । वह सत्य हो जाएगा। सो यह गांधी का सत्य इस गांधीवादी देश में? सत्ता ही नहीं, पूरे समाज में असत्य का बोलबाला है।

इसकी तकलीफ इसी कलम से लिखी कहानी या नाटक लड़ाई में निकली है, जहाँ सत्य के लिए लड़ने वाला एक आदमी इस समाज में 24 घंटे भी जिंदा नहीं रह पाता और इसी नतीजे पर पहुँचता है कि सत्य वह ढाल है, जिसे लेकर हर जगह झूठ की लड़ाई लड़ी जा सकती है। पूरी व्यवस्या यही कर रहीं है और यही सिखा रही है।""

इस नाटक का एक पात्र सत्यव्रत शर्मा हैं, जो आवेश में चिल्लाता है कि "अब में सत्य के लिए नहीं लड़ूंगा।" उसकी पत्नी उससे कहती है, "बच्चों की फीस दनी है, महीने का राशन लाना है, दूध और सब्जी वाले का हिसाब देना है। तुम सत्य के लिए नहीं लड़ोगे तो यह लड़ाई कौन लड़ेगा?" और आदर्श की असंगति है। इसी लड़ाई के लिए सत्य की लड़ाई जरूरी है। "मेरे बच्चे इन गंदे स्कूलों में नहीं पढ़ेंगे। में ही उन्हें पढ़ाऊँगा, आज से उनका स्कूल जाना बंद ।"

सत्यव्रत यथास्थिति का विरोध व्यक्त करते हुए व्यवस्था के विरुद्ध अपनी मुट्ठियाँ तानकर संघर्ष पथ पर आगे बढ़ जाता है। उसे परिणाम की चिता नहीं सताती। वह कहता है- "कौन खत्म होगा, यह बाद की बात है।"" सार्थक एवं सही दृष्टिकोण से रहित होकर लड़ी जाने वाली लड़ाई भले ही सत्य के पक्ष में लड़ी जा रही हो, आगे नहीं बढ़ पाती, परिणामतः उसे जान गंवानी पड़ती है। "सत्य की रक्षा का दायित्व जिस पुलिस विभाग के कंधों पर है, उससे सत्य की रक्षा का जब अनुरोध किया जाता है तो वही पुलिस ऐसा जवाब देती है, जिससे हमारे भ्रष्ट शासन-व्यवस्था की निरर्थकता और खोखलापन सामने आ जाता है: "सत्य की रक्षा करना हमारा काम नहीं है। हम शांति और व्यवस्था की रचना करते हैं।" नाटक की समाप्ति वहाँ होती है, जहाँ असत्य और भ्रष्ट शासन-विरोधी पात्र की मृत्यु होती है। आधुनिक

परिवेश में इसे राजनीतिक-सामाजिक पतन की पराकाष्ठा का द्योतक माना जा सकता है।

'अब गरीबी हटाओ' व्यवस्वा की चट्टान और मानवीय संकल्प-शक्ति: 'अब गरीबी हटाओ' यह कोई नारा नहीं है, न ही यह शीर्षक किसी नारे से सम्बद्ध है। इस नाटक के विषय को स्पष्ट करते हुए स्वयं सर्वेश्वर ने लिखा है, "अब गरीबी हटाओ कोई नारा नहीं है, न यह शीर्षक किसी नारे से जुड़ा हुआ है। इसका संदर्भ एक व्यापक मानवीय नियति है और उसी संदर्भ में इसे ग्रहण किया जाना चाहिए।"

अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए वे आगे लिखते हैं, "यह नाटक व्यवस्था-विरोध का नाटक नहीं है, जन-समर्थन का नाटक है। उस जन के समर्थन का नाटक है, जो सदियों से आज तक एक व्यापक अपमान और शोषण का शिकार बना हुआ है। यह नाटक उसको आकांक्षाओं और घुटन को, उसकी यातना और उसके संघर्ष को उस चट्टान के नीचे दिखाने की कोशिश करता है, जो हर बार व्यवस्था की सुरक्षा के नाम पर उसके ऊपर रख दी जाती रही है। उस चट्टान के नीचे से कैसे मानवीय संकल्प का विरवा तिरछा होकर जीवन की रोशनी की खोज के लिए निकलता रहा है, यह इसमें दिखाने का प्रयत्न किया गया है। वस, इतने ही अर्थ में इसे व्यवस्था से टकराव का नाटक माना जा सकता है, जितने अर्थ में वह अस्तित्व की रक्षा के सवाल से जुड़ा है। उस अर्थ में नहीं, जिस अर्थ में वह किसी महत्त्वाकांक्षा से जुड़ने का सवाल बनता है।"

सर्वेश्वर ने 'लड़ाई' नाटक के नायक सत्यव्रत को अकेले छोड़ दिया था, किंतु इस नाटक में उन्होंने उसे जन-प्रवाह की लय से संबद्ध कर जीवंतता प्रदान की है: "ग्रामीण, उसे तू अकेले नहीं मार पाएगा। उसकी बोटी-बोटी काट डाल, फिर भी वह जिंदा रहेगा। इसके बाप का कत्ल हुआ था। मेरे ही दादा ने किया था। फाँसी हुई। पर वह मरा नहीं, अपने बच्चे में जिंदा है। एक साँप को मारने से क्या होगा?

उसका खानदान तो रहेगा।""

सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों, अवशिष्ट सामंती और परंपरागत शोषण के विरोध के लिए सर्वेश्वर इस नाटक में संगठित और लम्बी लड़ाई के मूड में दिखते हैं। मुक्ति का जो सूत्र 'बकरी' नाटक में उन्होंने प्रयुक्त किया था, उससे हटकर इस नाटक में वे दर्शकों को सीधे संबोधित कर संगठित संघर्ष द्वारा व्यवस्था परिवर्तन का संदेश देते हैं :

"नट, दर्शकगण : यह झूठी धमकी नहीं है। हम तो नाटक खेलने और बंद करने को तैयार हैं, यदि आप हमारा साथ दें। पर आप साथ नहीं दे सकेंगे, आप की लाचारी है। बाल-बच्चे वाले आदमी हैं, ज्यादा सोचते-समझते हैं। यह नाटक

तभी हो सकता है, जब आपने इतनी ताकत आ जाए कि आप मिल कर इतनी ताकत का मुकापता कर सकें।

सर्वेश्वर जनमानस को यह संदेश देते हैं कि वस्तुतः इस नाटक के माध्यम से समाज की भयावह स्थिति और विसंगतियों से भयभीत होने के चजाए संगडित होकर उनका मुकारता करके ही हम इन विसंगतियों पर विजय प्राप्त कर पाटन, तभी नव समाज का निर्माण संभव हो पाएगा। वहाँ नाटककार का दृष्टियान आशावादी राय है और उसका संकल्प चट्टान की तरह दृढ़ दिखता है।

'कल भात आएगा' भूख की पीड़ा और भयंकर अभाव: भूख में व्याप्त अनाय बच्चे की दुखद कहानी इस नाटक में वर्णित है। मां-बाप के स्नेह व दुलार से तहत वह बच्चा किस प्रकार अभाव से ग्रस्त अभागे जीवन को जी रहा है, इसका अत्यंत मार्मिक चित्र नाटककार ने खींचा है। बच्चा अपने हाथ में भीख मांगने वाला कटोरा लेकर एक डाक के बम्बे के सम्मुख बैठकर अपनी दुखद कहानी बम्बे को सुनाता है। अपने अनाथ होने के साथ ही जब वह बम्बे को यह भी बताता है कि वह भात खाने का इच्छुक है। बहुत दिनों से उसने भात नहीं खाया।

उसी समय डाकिया बम्बे के पास पहुँचता है तथा बम्बे के पास बच्चे को देखकर वह उसकी टोंग पकड़कर खींचता है। अगले दृश्यांकन में बच्चा बम्बे को उखाड़ने का प्रयास करता है कि अचानक डाकिया आता है और बच्चे का हाथ रस्सियों से बाँध देता है। डाकिया बच्चे को अत्यंत भीषण यंत्रणा देता है। बम्बा उग बच्चे को समझाते हुए उससे कहता है कि अभी उसके हथियार बहुत छोटे हैं तया जमीन अत्यंत सख्त है। वह कुछ भी कर ले, पर जान देने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाएगा और इसी कारण उसे भात नहीं मिल पाएगा। अंततः डाकिए का फिर आगमन होता है और बम्बा उखड़ कर डाकिए द्वारा फेंके गए बच्चे के पास पहुँच जाता है। बच्चा पुनः कल भात आने की खुशी में प्रसन्नतापूर्वक गीत गाने लगता है। एक निराश्रित बच्चे की असहाय स्थितियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना ही सर्वेश्वर का मुख्य प्रतिपाद्य है। सर्वेश्वर ने एक अत्यंत सहज एवं छोटी सी घटना को अपनी साहित्यिक प्रतिभा के द्वारा गंभीरता में लेकर नाटक के उद्देश्य को प्रमुख सामाजिक समस्याओं के संदर्भ से संबद्ध किया है।

'मों-भों खों-खों' अमानुषिक व्यवस्या के विरुद्ध संघर्ष : यह नाटक मुख्यतः हिंदी के नर्सरी और प्रारंभिक कक्षाओं के विद्यार्थियों को ध्यान में रख कर लिखा गया था। सर्वेश्वर ने इस संबंध में स्वयं लिखा है कि "ऐसा नाटक तो एक भी नहीं जिसमें इस आयु वर्ग के बच्चे नाच-गा सकें, उछल-कूद कर सकें और एक तरह से खेल का मजा पा सकें, जिसके खेलने से किसी कैद में होने का भाव उनमें न आए, उनकी

कल्पना खुले और बिना कथोपकथन शब्द व शब्द रटे। वह कहानी के आधार पर खुद ही मन चाहे वाक्य जोड़ घटा सके, फिर भी नाटक को मूल भाव को क्षति न पहुँचे, गाने के लिए छंद इतने सरल हों कि उनकी जवान पर आसानी से चढ़ जाए।"

सर्वेश्वर इस बाल-नाटक के माध्यम से भविष्य में आने वाली प्रमुख समस्याओं से लड़ने हेतु बच्चों को संगठित व प्रोत्साहित करने का प्रयास करते हैं। इसके साथ ही बच्चों के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखकर मानवीय दृष्टिकोण, कल्पनाशीलता भी पैदा करने की ललक भी दिखाते हैं:

जिसके हाथ में कोड़ा है,

उसे बनाना घोड़ा है,

जो हमको लड़वाएगा उसकी नाक पकौड़ा है।

'लाख की नाक' परिवेशगत चेतना: यह नाटक भी बच्चों को ध्यान में रखकर लिखा गया था, किंतु यह उनका अधिक मनोरंजन करने के बजाए उन्हें अपने परिवेश के प्रति सचेत व जागरूक करने का प्रयास करता है। यह नाटक उन्हें शोषण व अन्याय के प्रतिकार के लिए प्रेरित करता है, बच्चों के अंतर्मन में साहस और दिलेरी का भाव उत्पन्न करता है :

नाक हो लाख की या लोहे की

नाक दिल्ली की हो या अमरोहे की

नाक को कटने से बचाना है

नाक से ही यहाँ जमाना है।"

सर्वेश्वर के नाटकों में सामाजिक विसंगतियों के भरे पूरे चित्र उपलब्ध हैं। इन सामाजिक विसंगतियों से निवृत्ति तभी मिल सकती है, जब जनमानस आपसी मतभेदों एवं क्षुद्र स्वार्थों को त्याग कर सामूहिक संघर्ष द्वारा भ्रष्ट शासन तंत्र का प्रतिकार करे, अन्यथा उसे ऐसे ही बंद अंधेरे रास्तों से गुजरना होगा, जिनकी कोई मंजिल नहीं है। व्यक्ति की संघर्ष-चेतना का जागरण करना ही नाटककार का प्रमुख उद्देश्य है। इन नाटकों में ऐसे विविध विषयों को चित्रित किया गया है, जिनका मानव-जीवन से गहरा सरोकार है। इन नाटकों की विषयवस्तु ऐतिहासिक नहीं है। इसकी विषयवस्तु सामाजिक है, जिसमें नाटककार ने राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और निम्न मध्य वर्ग के जीवन पर प्रायोजित इतने नाटकों का लेखन किया है। कहना न होगा कि समाज की प्रमुख समस्याओं और विसंगतियों को ही सर्वेश्वर ने अपने नाटकों की विषयवस्तु का आधार बनाया है।

नई दृष्टि

हिंदी नाट्य-लेखन के क्षेत्र में अपने नाटकों के माध्यम से सर्वेश्वर ने समकालीन नाट्य-लेखन धारा पर तीव्र विचारोत्तेजक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं। इसके साथ उन्होंने कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर नाटक की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इनके नाटकों का तेवर भिन्न है। इनमें नाटककार ने प्रयोग, नई शैली, नई क्रांति, समसामयिक संदर्भ, नया कच्य, परिवर्तित हो चुके संदभों में परिवर्तित भाषा नाटक एवं रंगमंच के अनोखे लय-विधान और परंपरागत नाट्य-सड़ियों को तोड़कर नवीन और जीवंत वातावरण तैयार किया। इन नाटकों में आम आदमी के जीवन का मुहावरा है। नाटकों में सर्वेश्वर की यह नई दृष्टि विविध रूपों में समीक्षकों के समक्ष उपस्थित होती है।

रूपवादी शिल्प की अपेक्षा कव्य की प्रमुखता : रूपवादी शिल्प की अपेक्षा कथ्य या विषयवस्तु को प्राथमिकता देते हुए तीसरा सप्तक के अपने वक्तव्य में सर्वेश्वर लिखते हैं- "मैं विषयवस्तु को रूप विधान से अधिक महत्त्व देता हूँ।" यह सच है कि सर्वेश्वर अपनी पूर्व मान्यताओं पर टिके नहीं रहे। उन्होंने सामाजिक विकास की परिवर्तनकारी शक्तियों को लोगों की चेतना में न ढूंढकर उनके सामाजिक जीवन और उनके संघर्षों में तलाशा। वे परिवर्तनकारी शक्तियों को अमूर्तन में नहीं, बल्कि समाज के अंदर ही ढूँढ रहे थे। उन्होंने संभवतः यह निश्चय कर लिया था कि यदि कला के माध्यम से जनता की सेवा करनी है, तो सामंती संस्कारों में युगों से विकसित किए रूपवाद को अलग करना होगा। उनके नाटकों में यह प्रयास दिखाई भी देता है।

सांस्कृतिक दबाव और रचनाधर्मिता नामक एक लेख में सर्वेश्वर स्वयं स्वीकारते हैं- "संस्कृति पर दूसरा दबाव सामंती संस्कारों में युगों से विकसित किए गए रूपवाद का है। कविता और नाटक में कला के जो ढाँचे पूँजीवादी सभ्यता ने तय किए हैं, यही आज भी हावी हैं। नया सौंदर्यबोध उस पत्थर के नीचे दवा है। कविता आमजन के लिए लिखेंगे, लेकिन रूप उसका उस सीमित वर्ग के लिए ही होगा, जो उस साँचे में ढला है। यही हाल नाटकों का है- लगभग सभी कलारूपों का है। जन के लिए लिखा जाने वाला नाटक, कहानी, उपन्यास कविता, सब जन तक नहीं पहुँचते, उसके काम के नहीं हो पाते और जो पहुँच पाते हैं, वे साहित्य और कला नहीं माने जाते।""

वे मानते थे कि रुपवाद जैसे पत्थर से दवे सौंदर्यबोध को नाटक ही सामने ला सकता है। आगे उसी लेख में वे कहते हैं- "फिल्मों, रेडियो, टेलीविजनों का रास्ता यंद है, नाटकों का ही खुला है। नाटक इस दबाव के खिलाफ भी और दबाने वाली

ताकतों का चेहरा बेनकाब करने के लिए लिखे आएँ और नाटक करने वालों का साथ स्थानीय स्तर पर जुटाया जाए।"

अपने नाटकों में उन्होंने लोक रूपों को व्यापक संदभों में प्रयुक्त किया है। दर्शकों को प्रभावित करने हेतु आज लोकरूपों का प्रयोग लेखन और प्रदर्शन दोनों ही स्वरों पर पड़ल्ले से हो राप है। हालांकि सर्वेश्वर ने अपने नाटकों में लोकरूपों का प्रयोग दिखावे अथवा प्रदर्शन के लिए कभी नहीं किया। उन्होंने कभी रूपवादियों की भांति रूप के लिए रचना नहीं की, बल्कि उनकी रचनाओं में विषयवस्तु स्वयं अपना रूप लेकर आती है। उन्हें इस हेतु कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। शिल्प को लेकर भी किसी प्रकार का आग्रह उनमें नहीं दिखता है। राष्ट्र की वस्तुगत परिस्थितियों और परिवेशजनित विडम्बनाओं को ध्यान में रख कर ही उन्होंने लोकरूपों का प्रयोग किया है। उनके नाटकों में पूर्ण कलात्मकता के साथ लोकरूपों का सहज रूप दिखाई देता है। ये इसकी आवश्यकता अनुभव करते हैं।

सामाजिक चेतना : रचनात्मक सफलता की दृष्टि से वही नाटक अधिकाधिक सफल कहा जा सकता है, जिसका जनता की चेनता से सीधा सरोकार है। आज के संदर्भ में यह प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, कि किस प्रकार के नाटक जन-चेतना से सीधा सरोकार रख सकते हैं। इस दृष्टि से सर्वेश्वर प्रेम और परिवार की स्वाभाविक समस्याओं के नाटकीयकरण को अश्लील मानते हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि इस तरह के प्रस्तुतिकरण से न केवल नाटककार, अपितु संपूर्ण दर्शक समुदाय की रचनात्मक सामध्यं, प्रतिभा व प्रस्तुति की तैयारी का समय व धन का अपव्यय होगा। उनका यह भी मानना था कि एक नाटककार को वह छूट कदापि नहीं मिल सकती, जो एक कवि और कथाकार को मिल सकती है। वे नाटक को मात्र मनोरंजन का साचन नहीं मानते, अपितु वे नाटक को घातक प्रहार करने का सशक्त माध्यम मानते हैं। वे स्वयं कहते हैं, "नाटक के संदर्भ में अपनी बात यही नहीं हो सकती, जो कविता और कहानी में हो सकती है। जैसे कि में स्त्री-पुरुष संबंधों के नाटकों को तात्कालिक आवश्यकता से सहमत नहीं हूँ। इन संबंधों की टकराहट में भी मूल बात न सही, स्थूल आधार अथवा कारण वे सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक परिस्थितियों हैं, जिनमें हम जीते हैं। इस समय हमारा समाज जिस चोट से जख्मी है, उसका तात्कालिक उपचार राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों की जांच-पड़ताल में ही है। चाहे वह भूमिहीन किसान की दर-दर भटकन हो, चाहे हरिजन का जिंदा जलाया जाना।""

वस्तुतः "समाज से तटस्थ होकर कोई भी सच्चा साहित्यकार नहीं बन सकता अनुभवहीन व्यक्ति सच्चा साहित्य लिखने में सर्वथा असमर्थ होगा। वह समाज से

अनुभव लेता है और उस अनुभव में भागीदार भी होता है। बिना सामाजिक अनुभव। के कोई भी सच्या साहित्य नाहीं लिखा जा सकता। सर्वेश्वर न सिर्फ रूमानियत वातावरण से ऊपर उठकर साफ-सुथरी बात करते हैं, बल्कि अपने समय रचना-कव की ही तरह रंग-कर्म की भी अपनी सामाजिक चिंता से पूरी तरह प्रतिबद्ध रखते है। वे सामाजिक अन्वेषण मी करते हैं और साथ ही छिपे अंधेरे कोनों का अन्वेषण में करते हैं जो सामान्य चेतना को परिधि में नहीं आते। सामाजिक अनुभवों का विश्लेषण करते हुए उन्हें अर्थ देना तथा उस अनुभव को रचनात्मक-चेतना का नंग बनाकर रचना करना और इस प्रकार समाज से पाई गई बस्तु को रचनात्मक का देकर फिर समाज को लौटा देना ही सर्वेश्वर की सृजनशील प्रतिमा का लक्ष्य है। इस तरह उनका साहित्य सामाजिक कर्म हो जाता है।

सर्वेश्वर का नाम हिंदी नाटकों को राजनीति, समसामयिक प्रश्न, जनमानस की पीड़ा और व्यापक दर्शक-समूह की चेतना से संबद्ध करने वाले रचनाकरों में प्रमुख है।

सामाजिक, राजनैतिक विसंगतियों और कुचक: सामाजिक राजनीतिक विसंगतियों पर तीखा प्रपर एवं व्यंग्य उनके प्रायः सभी नाटकों में उपलब्ध है। भ्रष्ट शासन-व्यवस्था के सारे प्रपंच और दबाव को प्रतिक्षण झेलते हुए आम आदमी का असंतोष, विद्रोह, कुष्ठा और खोझ के साथ ही साथ एक साहसिक निर्णय भी है। परिवेश में सर्वत्र व्याप्त सामाजिक-राजनैतिक कुचक्रों, भ्रष्ट व्यवस्था-तंत्र के चंगुल में फंसे निरीह जन-वर्ग का वास्तविक चित्रण उनके सारे नाटकों का मूल विषय रहा है। 'बकरी' नाटक में उन्होंने तीन डाकुओं और सिपाही द्वारा गाँव की अत्यंत गरीब औरत की बकरी हड़पने का प्रसंग चित्रित किया है। पूरे नाटक में उसी के उतार-चढ़ाव द्वारा सारी विद्रपता और विडम्बना की प्रस्तुति की गई है।

औरत, पर हुजूर ई बकरी हमार है। हम गरीब आदमी है। आप किसी और बकरी को गांधी जी की बकरी बनाय लें। हमरे बच्चे एही के दूध से सखी रोटी खाते हैं।

एही के सहारे हम जीय रहे हैं।

सिपाही: इसकी है, भाग यहाँ से।

औरत: आप बड़े लोग हैं हुजूर। आपको एक नहीं, हजार बकरी मिल जाएगी। हम गरीब का सहारा न छीनो।

सिपाही: हुकुम हो तो इसे भारत सुरक्षा कानून निवारक नजरबंदी कानून, अपराध संहिता की बकरी धारा के अधीन गिरफ्तार कर लूँ?

दुर्जन : औरत, यह बकरी तुझे नहीं मिलेगी। यह तेरी नहीं है।

उपर्युक्त पंक्तियों हमारी भ्रष्ट शासन-व्यवस्था का नग्न चित्रण है। इस व्यवस्था

में गांधीवाद दर्शन और सत्य की दुहाई देकर असत्य और शोषण को पोषित किया जा रहा है। हमारी शासन-व्यवस्या की जड़ों तक को भ्रष्टाचार रूपी विषाणुओं ने खोखला बना दिया है। व्यक्तिगत स्वाथों की पूर्ति हेतु सारे अनैतिक और राष्ट्र विरोधी कार्य इस भ्रष्ट शासन व्यवस्था में सम्पन्न किए जा रहे हैं। रक्षक ही भक्षक बनकर आम व्यक्ति को भयाक्रांत कर रहा है। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी आम आदमी को छला जा रहा है। उसका शोषण आज भी उसी तरह से हो रहा है। इस शोषण और छलावे का यथार्थ रूप सर्वेश्वर के नाटकों में दुष्टव्य है।

"आदमी तुम भी गाँव के हो?

प्रहरी हों, और तुम्हारी ही तरह छोटी जात का हूँ। राजा ने लगान न देने पर मेरे बाप को मार डाला था, फिर सारी जमीन हड़प ली और मुझे दया कर सैनिक बना दिया।

आदमी: लगान क्यों नहीं दिया था?

प्रहरी: दादा कहते थे, खेत हम जोतते हैं, बोते हैं, फिर राजा को लगान किसलिए दें?

आदमी: राजा तो कहता है कि वह हमारी रक्षा करता है?

प्रहरी (उत्तेजित होकर) रक्षा करता है, या लूटता है, तबाह करता है।""

उपर्युक्त नाटकांश में भ्रष्ट शासन-तंत्र की भ्रष्ट विचारधारा, स्वार्थ-लोलुपता, अवसरवादी दृष्टिकोण और महत्त्वाकांक्षा द्वारा आम आदमी के शोषण का जीवंत चित्रण है।

"सर्वेश्वर समाज से जुड़कर अपना दायित्व निभाते रहे। उनके सभी नाटकों में गरीब वर्ग के शोषण उत्पीड़न का चित्रण मिलता है। वे अपने परिवेश के प्रति सजग रहते हुए, सामाजिक संदभों से जुड़कर तथा शाश्वत मूल्यों की अपेक्षा समसामयिकता का दायित्व निर्वाह करते हुए मानव मूल्यों पर सहज रूप से बल देते रहे। उनके भीतर सामाजिक सत्य तक पहुँचने और उसे अभिव्यक्त करने की जबर्दस्त छटपटाहट रही है। यही कारण है कि उनके नाटक जन-जीवन व उसकी यथार्थ स्थितियों को अभिव्यक्त करते हैं।

जनमानस के सुख-दुख व उसके सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक संघों में सम्मिलित होने की अदम्य जिजीविषा और प्रयास ही उनकी सृजन यात्रा है।

रंगमंचीय दृष्टि

नाटक की सार्थकता अभिनेयता के परिप्रेक्ष्य में "नाटक की पूर्णता उसके पाठ्य में नहीं, अभिनीत स्वरूप में है। नाटक की परिणति रंगमंच पर ही पूर्ण होती

हैं। मात्र नाटक लिखकर नाटककार पूर्ण संतुष्टि नहीं प्राप्त कर सकता है। नाटक की रंगमंचीय प्रस्तुति ही नाटककार का प्रमुख उद्देश्य होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से हिंदी-नाटक अपने विकास की ओर निरंतर अग्रसर है। समकालीन हिंदी नाटक सामाजिक संदभों से जुड़े हुए हैं। उनमें यथार्थ-बोध भी है और आम आदमी के संघर्ष को रूपावित करने को क्षमता भी। आज के हिंदी-नाटक रंगमंच से जुड़े हुए हैं, जिससे नाट्य-प्रदर्शनों में भी गति आई है। काफी उत्साह से कई रंगकर्मी इस क्षेत्र में आए हैं और हिंदी का नया नाट्य- लेखन-प्रदर्शन शुरू हुआ है। पिछले दो दशकों में नाटककार रंगमंच के व्यावहारिक क्षेत्र में आया है और इसका परिचय देश के पारंपरिक नाट्य-रूपों में बढ़ा है। वर्तमान हिंदी नाटकों में पारंपरिक युक्तियों, कल्पनाशीलता संगीत और नृत्य तथा लोकमंच के अनिवार्य उपकरणों का समावेश हो रहा है।

जब कोई भी नाटक मचित होता है तो नाटककार को आयाम तो मिलता ही है और फिर नाटक लिखना, उसे मंचित करना, लिखित शब्दों को वाच्य रूप में सुनना, मंचीय व्यवस्था से गुजरना, ध्वनि और प्रकाश, विभिन्न तकनीक का प्रयोग आदि सभी कुछ अपने स्तर पर एक पूरी प्रक्रिया है। नाटक रंगमंच पर पहुँचकर ही अनुभव को समृद्ध, सोच को परिपक्व और दृष्टि को साफ करते हैं। रंगमंच को ध्यान में रखे बिना सार्थक नाटक लिखना संभव नहीं, क्योंकि ऐसे में जो कुछ भी लिखा जाता है, वह महज कच्ची सामग्री तो हो सकता है, नाटक नहीं। तात्पर्य यह कि नाटक और रंगमंच एक दूसरे के पूरक हैं तथा इनमें परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध है।

रंगमंच के लिए उपयोगी तत्त्व -"नाटकीय स्थितियों का चयन, पात्रों को बातचीत का उतार-चढ़ाव अर्थात् संवाद, उनकी गतियाँ, क्रियाएँ, उपयुक्त वातावरण की प्रभावशाली सृष्टि, दर्शकों का बाँधने वाला माहौल, विभिन्न पद्धतियों और प्रयोगों की संभावनाएँ।" सर्वेश्वर के पास रंगमंच की सही विस्तृत परिकल्पना और उसके अनिवार्य अंगों की धारणा, नाटकोचित संवाद, और भाषा के साथ अभिनय की सूक्ष्मतम स्थितियों का सजग बोध है। "नाटक की इन मूलभूत विशेषताओं और उनकी सर्जनात्मक शक्ति का विस्तार हिंदी में वर्षों बाद यहाँ मिलता है। ये समस्त तत्त्व सर्वेश्वर के मस्तिष्क में स्पष्ट रहते हैं? सर्वेश्वर के सभी नाटकों में जो मूल विशेषता दिखाई पड़ती है, वह है-समस्त नाटकों में पिरोयी हुई उनकी गहरी रंग दृष्टि।"*

नाटकीय परिस्थितियों का समुचित चयन : डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार, नाटकीयता से तात्पर्य ऐसे क्षणों से है, जिसमें तनाव, विस्मय, आकस्मिकता तथा स्तब्धता का समन्वय रहता है। नियतिवद्ध पणिाम के लिए संघर्षरत कार्य नाटकीयता को तीव्र बनाता है तथा जीवन की ऐसी सभी स्थितियों, आवेग, संवेग, आकांक्षाएँ

अभिलाषाएँ, जो किसी भी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति तथा संघर्ष के बीच के अंतराल को तनाव में भोगती हैं, नाटकीय स्थिति के अंतर्गत आती हैं।" 'बकरी' के एक दृश्य में इन स्थितियों को देखा जा सकता है-

"युवक: हमें किसी की कृपा नहीं चाहिए।

दूसरा ग्रामीण : तब देर काहे कर रहे हो, दौड़ी जाओ।

बरगद से ऊपर निकल जाओ।

युवक : हमें ऊपर जाना है न नीचे। बराबर रहना है।

एक ग्रामीण: कौनो ठिकाना ना ही ना

युवक : ठिकाना है, पर अभी आपकी समझ का फेर है।"

'कल भात आएगा' नाटक के एक दृश्य में सामाजिक मान्यताओं से विद्रोह के कारण उपजे तनाव को निर्मित करने वाले आवेग और आकांक्षाएँ अधिक नाटकीय स्थिति को जन्म देती हुई दिखाई पड़ती हैं-

"बच्चा: वे मुझे क्यों नहीं सिखाते?

बंबा : डरते होंगे।

बच्चा : मुझसे ?

बंबा : हाँ।

बच्चा क्यों?

बंबा : क्योंकि तू कागज को छोड़कर कहीं भी लिख सकता है।

बच्चा : में उनकी नाक पर भी लिख सकता हूँ, मुँह पर भी, पेट पर भी खोपड़े पर भी।"

संवाद : "सर्वेश्वर के नाटकों में संवाद की भावात्मक तथा भाषिक सघनता, प्रेषणीयता तथा लयात्मकता, कृति में तथा मंच पर अपूर्व प्रभाव पैदा करती है।"" सर्वेश्वर के नाटकीय संवाद छोटे हैं। लंबे भाषण बनाकर वे प्रेक्षक की उत्सुकता नहीं दवाते। संवादों के बीच-बीच में तुकबंदी और पद्यात्मकता का सुंदर प्रयोग किया गया है जो समसामयिक व्यंग्यात्मकता से संबद्ध हो जाते हैं:

नट : कलात्मक मानी डिब्बे में डब्या।

नटी (चिढ़कर) हों, डिब्बे में डब्बा।

नटः (गाकर) डब्बे में डब्या। उसमे मुरब्बा फिर भी है चींटी, या मेरे अब्बा।""

'बकरी' नाटक में नेताओं के लंबे भाषण, झूठे वायदे, शब्दों की फिजूलखर्ची, भाषण प्रियता एक खास प्रकार की उबाऊ शब्दावली और टोन है, जो हमारे राजनीतिक नेताओं के व्यक्तित्व और चरित्रों को और कारण उत्पन्न विसंगति को उभारने में सहायक होती है

लड़ाई नाटक का मूल रूप कहानी का है। यह कहानी से रेडियो नाटक और फिर मामूली परिवर्तन के साथ मंचीय नाटक के रूप में सामने आया है। रचनात्मकता की मूल संघर्ष-चेतना कहानी में होगी। अन्य परिवर्तन केवल उस मूल कहानी में माध्यमगत परिवर्तन है।"

सर्वेश्वर स्वयं स्पष्ट रूप से कहते हैं कि "कहानी के ढाँचे से निकल पाना कठिन था। रेडियो नाटक का रूप सामने था। अतः उसी के आधार पर यह मंच रूप तैयार हुआ है। एक बार विधा में रखना कस जाने पर दूसरे में फिर नए सिरे से ढालना स्वयं लेखक के लिए भी कठिन हो जाता है।" इनके संवादों में इसी कारण से कहानीपन स्पष्ट दिखता है और इसीलिए सर्वेश्वर इसे अपने उद्देश्य में सफल मानते हैं। उनके संवादों में निहित व्यंग्य का पैनापन दृष्टव्य है :

"बच्चा : मैं तो लिखना चाहता हूँ।

बंबा : जानता है, पर वह लिखना नहीं जानता, जिससे भात आ जाए।

बच्चा : में हथियार बना दूँगा। एक नुकीला पत्थर मैंने देखा है।

बंबा : यह जमीन सख्त है, पत्थर से नहीं खुदेगी। हथौड़ा, छेनी, कुदाल चाहिए।

बंबा : जब आँख-कान बंद हों तब खुला मुँह दर्द नहीं करता जैसे मेरा।" सर्वेश्वर के इन संवादों में निहित संकेत है-जैसे पहले वाक्य में ऐसे कामों को सीखने की ओर संकेत है, जो व्यवस्था से सुविधा दिलाते हैं। दूसरे संवाद को उस कोलाज के संदर्भ में देखना चाहिए, जिसमें शहरी सफेदपोश लोग बस पर पत्थर मार कर क्रांति लाना चाहते हैं, जबकि सामाजिक परिवर्तन उस दुनिया के हाथ में है, जो काम करती है। तीसरे संवाद में व्यंग्य है जो लगभग एक मुहावरा बन जाता है। इतना ही नहीं, पात्रों के क्रिया-व्यापार की तीव्रता सर्वेश्वर के नाटक को आकर्षक एवं अभिनयोचित बना देती है।" उनके नाटक 'अब गरीबी हटाओ' में पात्रों की इन क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को साथ-साथ हम देख पाते हैं:

"आदमी : अब फायदा और नुकसान जानने का हौसला नहीं।

ग्रामीण : यह हौसला जरूरी है। पस्त न होओ। पस्त होने से अंधेरा होता

परिवेशानुकूल प्रभावशाली सृष्टि : नाटक में "प्रेक्षकों के आवेगों को स्थायित्व देने के लिए प्रभाव की एकता अपेक्षित होती है, जो घटनाओं की गति और स्थितियों की सघनता से उत्पन्न होती है। 'कल भात आएगा' नाटक में भूखा गरीब बच्चा

बंबे को उखाड़ने में लगा है, जिसमें परिस्थितियों से जूझते हुए संघर्ष जारी रखने पर सफलता मिलने की स्पष्ट संभावना निहित है।"" नाटक का पूरा माहौल दर्शकों को अपने सम्मोहन में ले लेता है:

"बंबा : तू रुकेगा नहीं (चीखकर)

बच्चा नहीं (आहिस्ता से संकल्प भरी आवाज में)

बंबा : भात इस तरह कैसे मिलेगा?

बच्चा : मिलेगा तू जानता है, मैं अकेला हूँ।

बंबा (हारकर) नहीं मानेगा।

बच्चा: अब नहीं।

गीत और संगीत योजना : अपने नाटकों में सर्वेश्वर ने गीत भी समसामयिक, परिवेशगत और प्रभावशाली लिखे हैं। उनके गीतों में स्तरानुकूलता है। उन्होंने पारंपरिक नौटंकी शैली से हट कर गीतों को समकालीन व्यंग्य से जोड़ा है, जैसे 'बकरी' के गीतों में फिल्मी धुनों का प्रयोग, राष्ट्रीय गान की तर्ज पर बकरी माता की जय जय गान, झंडा ऊँचा रहे हमारा तथा रघुपति राघव राजाराम की धुन पर भजन की व्यंग्यपूर्ण रचना करना आदि कल्पनाशीलता के सुंदर उदाहरण हैं।

'बकरी' और 'लड़ाई' नाटक के अंतिम संकेत-गान नौटंकी शैली में हैं। शेष गीत इतने प्रभावशाली हैं कि दर्शक या पाठक उसमें खो जाता है। नौटंकी की तरह नगाड़ा, नट-नटी का गायन, नौटंकी की प्रचलित धुनें, भजन, कीर्तन, गजल, फिल्मी धुनें वैसे ही प्रयुक्त हैं, दृश्यात्मक समस्याएँ अपने आप हल हो जाती हैं और दर्शकों को नाटक के उद्देश्यों से पूरा-पूरा प्रभावित होना ही पड़ता है। उदाहरण के लिए 'लाख की नाक' नाटक का यह गीत दृष्टव्य है :

(नट-नटी का गान)

"म्यान में मिर्च भरी थी

म्यान में मिर्च भरी थी।

धार पर मिर्च लगी थी।

सूँघते छींक आ गई।

कट गई नाक बेचारी

झट गई नाक बेचारी

झट गई नाक बेचारी

किए की सजा पा गई।

इसी से हम कहते हैं

कि लालच बुरी बला है।

नाक कटवा लेती है

सदा लेती बदला है।

नोटंकी की भांति गीत की पंक्तियों को दो-दो बार प्रस्तुत करने से पूरे गीत में अद्‌भुत प्रवाहमयता और प्रभावशीलता उत्पन्न हो जाती है।

प्रस्तुतिकरण की विविध पद्धतियों और प्रयोगों की संभावनाएँ: सर्वेश्वर के नाटकों की एक प्रमुख विशिष्टता यह रही है कि उनके नाटकों का प्रस्तुतिकरण रंगमंच पर कई प्रकार से किया जा सकता है। सर्वेश्वर स्वयं भों-भों खो-खों की भूमिका में कहते हैं कि "अभी तक उसकी प्रस्तुति नौटंकी शैली में ही की गई है और यह जरूरी नहीं है। इसे किसी भी रूप में गाने और खेलने की कल्पना की जा सकती है। इसे कठपुतली नाटक भी बनाया जा सकता है और भीड़ का काम दर्शक बच्चों द्वारा लिया जा सकता है।"

इस प्रकार कोई कल्पनाशील कुशल निर्देशक इनके नाटकों को कई रूपों में मंच पर चाहे तो प्रस्तुत कर सकता है। उनकी नाट्य-कृतियों में रंग-संभावनाएँ इतनी हैं कि रंगमंच के सभी वर्गों को अपनी कल्पनाएँ और प्रतिभा दिखाने का सुअवसर मिल सकता है। 'बकरी' नाटक की राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुति इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। दिल्ली में इसे नौटंकी-शैली में, बंगाल में जात्रा शैली में, महाराष्ट्र में तमाशा शैली में तथा नुक्कड़ नाट्य-शैली के रूप में भी इसे जगह-जगह खेला गया।

यह इस बात का प्रमाण है कि सर्वेश्वर के नाटकों में प्रस्तुतिकरण की विभिन्न पद्धतियाँ और प्रयोगों की कई संभावनाएँ हैं। एक व्यापक प्रेक्षक समूह तक अपनी बात पहुँचाने के लिए उन्होंने इन नाट्य-पद्धतियों और लोक परंपराओं का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। जिन नाटकों को बिना किसी थियेटर, तामझाम के अतिरिक्त खुले मंचों पर इन विभिन्न रूपों में खेला जा सकता हो। ऐसी विशेषता बहुत कम नाटककारों के नाटकों में पाई जाती है।"

यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो सर्वेश्वर एक कुशल नाटककार के साथ-साथ एक कुशल रंगकर्मी की भूमिका में भी खरे उतरते हैं।

लोकप्रियता

नाटक अत्यंत लोकप्रिय विधा होने के कारण नाटककार को लोक-रुचि का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। इस संबंध में डॉ. नेमिचंद्र जैन की मान्यता है कि- "सार्थक नाटक एक साथ ही कई स्तरों पर विभिन्न रुचियों और संस्कारों वाले दर्शक वर्ग को संप्रेषित होता है। सामान्यतः नाटक का आवेदन न तो दर्शक वर्ग के सबसे

विकसित अंश के लिए अभिप्रेत है और न सबसे निचले पिछड़े हुए अंश के लिए। पर चूंकि एक तो इन दोनों अंशों में व्यवधान अगम्य नहीं होता, दूसरे नाटक दोनों के बौद्धिक स्तर के बीच कहीं बीच में अभिव्यक्त होता है, तीसरे उसमें एक साथ ही कई स्तरों पर जीवन के यचार्य का उद्धाटन होता है। इसलिए यह संपूर्ण दर्शक वर्ग को स्पष्ट करता है और उसे भाव विचलित करता है।

एक जनवादी चेतना सम्पन्न नाटककार होने के कारण सर्वेश्वर ने अपने नाटकों में यथार्थ जीवन-बोध को कलात्मक रूप में सामने रखा है। इन नाटकों में जनसामान्य की समस्याएँ उठाई गई हैं तथा व्यापक जन समुदाय की रुचि को भी ध्यान में रखा गया है। इसीलिए सर्वेश्वर के नाटक लोकप्रिय रहे हैं। इस तथ्य को उनके एक ही नाटक-बकरी के आधार पर ही लक्षित किया जा सकता है। पिछले तीन वर्षों में इस नाटक के तीन सौ से अधिक प्रदर्शन हो चुके हैं। न केवल विभिन्न बोलियों, बल्कि यह देश की प्रादेशिक सीमाओं में भी खेला जा रहा है।

सर्वेश्वर ने बकरी की अतिशय लोकप्रियता को देखकर इसके द्वितीय संस्करण की भूमिका में लिखा- "यदि यह नाटक क्षेत्रीय नाट्य रूपों में ढलने की ललक रखता है तो निश्चय ही हिंदी के भावी नाटकों की परिधि के विस्तार का रास्ता दिखाता है।" उनके नाटकों की लोकप्रियता का प्रमुख कारण यह रहा कि उनके नाटकों में भाव, विचार, पात्र और परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार की हैं कि वे आसानी से मूर्त और रूपायित होने के साथ ही रंगमंच पर दर्शकों के सामने साकार हो जाती हैं। उनके नाट्य-सौंदर्य के आवरण में लोकमंगल की भावना अपनी झलक पग-पग पर दिखाती रही है।

भाषा

भाषा के माध्यम से ही हम अपने भावों को दूसरों तक संप्रेषित कर पाते हैं। भाषा मुख्यतः भावों की वाहिका होती है। नाटक में नाटककार के मानसिक भावों को भाषा के माध्यम से ही मूर्त रूप मिलता है। किसी भी नाटक में भावाभिव्यक्ति का मूल आधार उसकी नाट्य-भाषा होती है। इस दृष्टि से यदि सर्वेश्वर की नाट्य-भाषा का विश्लेषण किया जाए, तो स्पष्ट होता है कि उनकी नाट्य-भाषा नाटक की मूल भावसंपदा को व्यक्त करने में पूर्ण सफल रही है। नाट्य-भाषा के विषय में सर्वेश्वर का यह मत है कि 'सबसे बड़ा सुख उस भाषा-जगत् के व्यवहार का है जिसमें भीड़ का हर पात्र मुझमें अलग-अलग बोली में बात करता है, यानी वह मुझे या मैं उसका या हम दोनों एक-दूसरे को रचते हैं। इसलिए नाटक में कविताओं के उस रूप का मैं इस्तेमाल करता हूँ जो भीड़ की ही हो सकती है। यानी गाई जा सकती

है और कहानी के ज रूप का, जो एक मुंह से दूसरे मुंह तक तेर सके, यानी सुनाई जा सके। सर्वेश्वर की भाषा में सामान्यतः निम्नलिखित विशेषताएँ मिलती है

आम बोलचाल युक्त रचनात्मक भाषा : अपने नाटकों के माध्यम से सर्वेश्वर ने आम जनता की समस्याओं को वाणी प्रदान की है। इस कारण उनकी भाषा भी आम जनता या आम दर्शकों के अनुरूप ही रही है। आभिजात्य संस्कार को व्याग कर सर्वेश्वर ने भावाभिव्यक्ति के लिए यथार्थ की सीधी और ठेठ आम बोलचाल की रचनात्मक भाषा में समकालीन और परिवेशजनित अनुभवों का नाटक रचा। इसका प्रमाण द्रष्टव्य है- "दुर्जन-पर हमारे लिए वही दीवान जी हो। दीवान जी में जो दीवानगी का चटखारा मिलता है, वही मुझे अच्छा लगता है। तुम्हारी दीवानगी की बानगी हम पहले ही देख चुके थे। हम तो उसी के मुरीद हैं। तो दीवान जी, चिन्ज वहीं रहती है। मसाला हर जमाना अपने-अपने पसंद का इस्तेमाल करता है।"

सहजता, रोचकता और प्रवाहमयता: सर्वेश्वर के नाटकों की भाषा की दूसरी प्रमुख विशेषता है सहजता, रोचकता और प्रवाहमयता। उन्होंने नाट्य-भाषा पर लदे जामे उतारे हैं। उनके नाटकों में अभिव्यक्ति और शैली का वैविध्य मिलता है। सर्वेश्वर ने नित्य प्रति के व्यवहार की भाषा को अपनी लेखनी द्वारा उठाया है। भाषा बोलचाल की है और स्वाभाविक है। उनके प्रायः सभी नाटकों में अभिव्यक्ति का खरापन और भाषा को कलावादिता से बाहर निकाल कर औजार बनाने का काम दिखाई देता है। चूंकि सर्वेश्वर आम आदमी की पीड़ा को आम आदमी के माध्यम से आम आदमी तक पहुँचाना चाहते थे। अतः उन्होंने भाषा का स्तर भी दर्शकों के अनुरूप रखा है।

उनके नाटकों का प्रधान गुण जो सहजगम्यता है, यह इसी लिए संभव हो सका है। दर्शकों को बहुत से संकेतों, व्यंजनाओं और प्रतीकों में न उलझाते हुए बड़ी सरलता से सरल भाषा में वे अपनी बात उन तक पहुँचाने में सफल रहते हैं। उनके नाटक 'अब गरीबी हटाओ' में भाषा का सहज रूप देखने योग्य है :

"ग्रामीण : कुछ खाओगे?

आदमी: अब उसी को खाऊँगा।

ग्रामीण: क्या होगा उससे, दूसरा सरपंच बनेगा, वह भी यही करेगा।

उपर्युक्त नाटकांश यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि सर्वेश्वर ने भाषाओं और बनावट के स्तर पर सादगी की अतुल्य शक्ति की नए सिरे से तलाश की है।

लोक-भाषा : कहीं-कहीं ग्रामीण पात्रों की बोली के अनुरूप सर्वेश्वर के नाटकों में भाषा प्रयुक्त हुई है। इसका कारण यह था कि लोकभाषा और वह भी ग्रामीणों के मुँह से उनकी बोली में उनकी पीड़ा, विवशता और सामाजिकता समस्याओं को व्यक्त

करना बहुत सार्थक सृष्टि प्रतीत होती है- "ग्रामीण बचवा, अब हम पढ़े-लिखे न हिन। पढ़बड्या के संगी साथ न हिन। ऊ ठहरे बड़वार, हम ठहरे छोटावार। छोटन के बड़े कहना माने के परत है। कहना न माने तो ठीक नाही। ऊ कहिन हम सिर झुका के मान लिहा। अब उनके करम उनके साथ। हमारे करम हमारे साथ।"*

नाटकीय भाषा : नाटकीय भाषा का अधिकाधिक प्रयोग सर्वेश्वर के नाटकों में देखने को मिलता है। सर्वेश्वर के नाटक 'कल भात आएगा' में प्रयुक्त नाट्य भाषा पर्याप्त व्यंजनापूर्ण और भावाभिव्यंजक है। इसे नाटकीय भाषा की एक अभ्यास-पुस्तिका मानकर 'मुद्राराक्षस' ने इसे वर्तमान स्थिति और मानवीय नियति का नाटक स्वीकार किया है:

"बच्चा: वे मुझे क्यों नहीं सिखाते?

बंबा : डरते होंगे।

बच्चा : मुझसे?

बंबा : हो।

बच्चा : क्यों?

बंबा : क्योंकि तू कागज को छोड़ कर कहीं भी लिख सकता है।

बच्चा : मैं उनकी नाक पर भी लिख सकता हूँ, मुँह पर भी, पेट पर भी खोपड़े पर भी।

मुहावरेदार भाषा : मुहावरों का प्रयोग बहुधा नाटक में रोचकता की सृष्टि करने के लिए किया जाता है। सर्वेश्वर ने भी अपने नाटकों में रोचकता की सृष्टि के लिए मुहावरों का समुचित प्रयोग किया है। मुहावरों के प्रयोग द्वारा उन्होंने जहाँ दृश्य विधान की स्वाभाविकता को सुरक्षित रखा, वही संदर्भ विशेष को उजागर करने एवं सामाजिकों पर उसके पूर्ण प्रभाव हेतु एक दृढ़ संकल्प को भी उजागर किया है। निम्नलिखित उदाहरणों से इसे समझा जा सकता है :

"नटी : और देखिए, आपकी नाक पर कहीं मक्खी न छींक जाए।" "एक ग्रामीण : तुम्हारे मुँह में भी घी-शक्कर, तुम बड़ा बनके दिखाओ।"

"एक ग्रामीण : तो इनहू के पूजो भैया, जलमा रहिके मगर से बैर।

"(नट-नटीगान) ऊँट की नाक में नकेल जरा बचके रहना।

"लोहारिन: ऐसा पक्का लोहा कि पहाड़ काट लो।

काव्यगत गुण और संगीतात्मकता की लय "नाटक की अनुभूतियों की सघनता भाषा के रूप में ही अभिव्यक्त और संप्रेषित होती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि नाटक की भाषा में काव्यात्मक गुण, नाटकीय विशिष्टता तथा संगीत की लय हो। सर्वेश्वर ने अपने नाटकों में इन सबको पर्याप्त स्थान दिया है। सर्वेश्वर

एक बड़े कवि थे इसलिए उनके नाटकों की भाषा में काव्यात्मक गुण स्वाभाविक रूप से आए जान पड़ते हैं, जिससे भाषा में रोचकता उत्पन्न हुई है। उनकी काव्यात्मकता का अंश दृष्टव्य है:

"नट : कलात्मक यानी डब्बे में डब्बा।

नटी (चिढ़कर) हों डब्बे में डब्या।

नटः (गाकर) डब्बे में डब्बा। उसमें मुरब्बा फिर भी है चींटी या मेरे अब्बा

"भो-भों, खो-खों नामक बाल-नाटक की भूमिका में सर्वेश्वर लिखते हैं- "बच्चों की संस्थाएँ और प्रारंभिक कक्षाओं के शिक्षक इस नाटक को करते समय अपने बच्चों की सामर्थ्य के अनुसार इसके संगीत को रूप दे सकते हैं।" प्रायः उनके सभी नाटकों में संगीतात्मक का वैशिष्ट मिलता है। 'बकरी' नाटक का समूह गान कहरवा तर्ज में उन्होंने किया है:

"बकरी मैया तोरे चरनन अरज करू

गांधी बाबा तोरे चरनन अरज करूँ

खेत न दाना, कूप न पानी केकर हुजूरे अरज करूँ।"

व्यंग्यात्मकता : सर्वेश्वर के नाटक व्यंग्यात्मक भाषा से युक्त होने के कारण अत्यंत सशक्त बन गए हैं। उन्होंने अपने नाट्यगीतों को समकालीन व्यंग्य से संपृक्त कर अपनी भाषा को परिवर्तित किया है:

"हे संकटमोचू

बना दे हमें घोंचू

अपना सिर नोचूँ न उनका मुँह नोचूँ

हे संकटमोंचू।"

आधुनिक नाटककारों पर व्यंग्य करते समय इनकी भाषा का रूप कुछ इस प्रकार होता है-

नट : यानी नाटक का जो सजा सजाया थाल चला आ रहा है, उसमें थोड़ी चटनी रख दें बस।

नटी : अरे बाबा फार्म फार्म में थोड़ा बदलाव। सभी बड़े नाटककार यह कहते

नाट्य-प्रकार के अनुरूप भाषा का स्वरूप: उनके नाटकों में नाट्य-प्रकार के अनुसार भाषा का रूप बदला दिखाई देता है। भाषा और भाव अथवा नाटकीय अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं। सर्वेश्वर भाव और विचार के अनुसार भाषा की सृष्टि में विश्वास रखते हैं। इसी कारण भाषा नाटकों के अनुकूल है, साथ

ही उसमें परिवर्तनीयत्ता और अभिनयोचित चंचलता भी स्वाभाविक रूप से समाविष्ट है। भाषा का रूप और टोन पात्रों की चारित्रिकता के अनुरूप स्वभावतः दला हुआ है।" उदाहरण द्रष्टव्य है:

"एक ग्रामीण मान लो बकरी गांधी महात्मा की है। देवी है। हम देवी माना सच्चे मन से माना। ऊ नाही मानिन। तो बताओ ऊ उल्लू बनिन कि हम।

युवक : बकरी देवी हो तं न।

दूसरा ग्रामीण मान लो कि है, फिर कौन उल्लू बना।

युवक : काका, उल्लू न ऊ बने न आप, उल्लू हम बने जो आपसे इतना बहस किया।"

इस प्रकार सर्वेश्वर के नाटकों की भाषा की विशेषताओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि- "भाषा की सरलता के कारण पाठक और प्रेक्षक बिना किसी कठिनाई और उलझाव के प्रत्यक्ष रूप से नाटकीय व्यंग्य संप्रेषित आवेग और अर्थ से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, साथ ही हास्य-व्यंग्य और रंगमंच के उपयुक्त बोलचाल की भाषा और उसके लहजे ध्वनि और लय ने हिंदी नाटक को पहली बार इस दौर में रंगमंचीय गतिविधियों से जोड़ा और नाटक के लिए साहित्यिक तथा लिखित भाषा से भिन्न एक जीवंत भाषा की तलाश शुरू की।"

नाटककार के रूप में

हिंदी-साहित्य में यदि हिंदी नाट्य लेखन के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हमें यह स्पष्ट दिखाई देता है कि भारतेंदु की नाट्य परम्परा में सर्वेश्वर ही वर्तमान समय के सशक्त नाटककार रहे हैं। भारतेंदु ने जिस देश-भक्तिपूर्ण और साम्राज्य विरोधी चेतना का अपने नाटकों में पारसी थियेटर की पतनशील नाट्य धारा के ही समानांतर, विकास किया था। उसे वर्तमान काल में सर्वेश्वर ने जनांदोलनों से शक्ति और शिक्षा लेकर पुनर्विकसित किया। 1950 से 1965 तक का हिंदी नाटक लेखन साहित्य की अन्य विधाओं की तरह पश्चिम से आयात किए गए फार्म में थोड़ा परिवर्तन करके चमत्कार उत्पन्न करने का लेखन है। यद्यपि इस समय के प्रमुख नाटककार डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, विपिन अग्रवाल, लक्ष्मीकांत वर्मा ने भी आम आदमी का चित्रण किया, किंतु उनके नाटकों में आम आदमी के नाम पर मध्यवर्गीय कथानक को ही ज्यादातर पेश किया गया।

सर्वेश्वर ने ही वास्तविक अर्थों में आम आदमी की पीड़ा को आम आदमी तक पहुंचाया। आधुनिक युग में नाट्य-लेखन के गतिरोध को नस्लवाडी किसान विद्रोह ने तोड़ा। पुनः यथार्थवादी दृष्टि का चलन नाट्य-लेखन में हुआ। विकासशील यथार्थ

को पकड़ने और उसे समझने में लोगों ने दिलचस्पी दिखाई। अनेक नुक्कड़ नाटकों की रचना हुई। लेखक और रंगकर्मी में तादात्म्य स्थापित हुआ, जो जयशंकर प्रसाद के जमाने से लगभग टूट-सा गया था। वास्तव में हिंदी नाटक का यह काल अच्छे नाटकों के अभाव का काल था। प्रारंभ में नाटकों के अभाव में जागरूक रंगकवित ने अन्य भारतीय भाषाओं और विदेशी नाटकों के अनुवाद हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत किए। नाटक के अभाव की पूर्ति और जड़ता को दूर करने में सर्वेश्वर ने ऐतिहासिन भूमिका अदा की। भारतेंदुकालीन हिंदी नाटक जिस तरह सामाजिक आंदालेनों के अनिक रूप में उभरकर आए थे और आज की लड़ाई में फिर जैसे नाटकों की सोच भूमिका बन रही है, इस बीच के लंबे अंतराल में साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ही नाटक की भी एक अलग 'स्वायत्त' दुनिया खड़ी हो गई थी। विधागत वैशिष्टय के नाम पर जो कथित रंगमंचीय प्रयोगों के दौर चले वहाँ तो यह और भी अनेक जवाबदेहियों से मुक्त हो गया था।" ऐसी परिस्थिति में इस क्षेत्र में सर्वेश्वर का आना निश्चित रूप से एक ऐतिहासिक घटना की तरह है।

रचनात्मक जागरूकता

सर्वेश्वर के भीतर एक प्रबुद्ध रचनाकार विद्यमान था, जो उन्हें अपने समय और परिवेश के प्रति अत्यंत सजग व जागरूक बनाए रखता था। "वे न सिर्फ रूमानियत और अधकचरी 'एब्सर्डिटी' के जंगल से उबर कर साफ-सुथरी बात करते हैं, बल्कि अपने समग्र रचनाकर्म की तरह रंगकर्म को भी अपनी सामाजिक चिता से पूरी प्रतिबद्धता के साथ लैस करते हैं। वे पारंपरिक अर्थों में रंगकर्मी नहीं हैं और अपने नाट्य-लेखन के प्रति दुराग्रही भी नहीं हैं, पर समय और समाज की चिता ने उनमें एक विनम्र जागरूकता पैदा की है। एक तरफ, अपने समय के समर्थ रंगकर्मियों से संपर्क और सामूहिक भागीदारी का प्रयास उन्होंने किया है, तो दूसरी तरफ दर्शकों से भी सीधे संवाद की प्रक्रिया शुरू करने का श्रेय हिंदी में उन्हीं को है।

सर्वेश्वर 'बकरी' के बारे में लिखते हैं- "यह नाटक न लिखा जाता (1) यदि हिंदी में कोई ऐसा नाटक होता जिसमें जन चेनता को लोकभाषा और लोकरूपों के माध्यम से सामाजिक अन्याय के साथ जोड़ने का एक नया व्याकरण देखने को मिलता। (2) यदि हिंदी के तथाकथित श्रेष्ठ नाटक बड़े प्रेक्षागृहों, भारी ताम-झाम और विद्वत प्रेक्षक समाज के मुहताज ने होते। (3) यदि हिंदी के नाट्ककार यश प्रार्थी न होकर आम आदमी की पीड़ा आम आदमी की जबान में आम आदमी के बीच ले जाना हिंदी रंगमंच के लिए अनिवार्य मानते।"""

ऊपर से गोक्ति जैसा दिखने वाला यह वक्तव्य दरअसल उनके अपने खुद के विकास-क्रम और हिंदी के तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में सामूहिक आत्मलोचना का एक बेचैन स्वर है। सर्वेश्वर ने सिर्फ कथ्य के स्तर पर अपने को हिंदी की स्वस्थ परंपरा से जोड़ते हैं, बल्कि 'फार्म' और शिल्प में भी अधिक वैज्ञानिक दृष्टि अपनाते हैं और पूरी सजगता के साथ रंगमंच के संश्लिष्ट माध्यम के लिए भी नई संभावनाएँ तलाशते हैं। लोकरूपों का प्रयोग उनके लिए सहूलियत फैशन था यश पाने का जरिया नहीं है। अपने समय में वे गहराई से इसकी आवश्यकता महसूस करते हैं। सर्वेश्वर की आवाज बच्चों से लगाकर बड़ों तक, खासकर बेसहारा, उपेक्षित, कमजोर और दबे हुए लोगों के लिए एक बेहतर दुनिया बनाने की सच्ची छटपटाहट से भरी आवाज थी। समाज की समझ उन्होंने अपने बहुत गहरे और निजी कष्टों से हासिल की।

सर्वेश्वर के कृतित्व की सबसे बड़ी उपलब्धि लोकतंत्र के स्वांग के भीतर मौजूद असंगति को उभारना है। सर्वेश्वर का संपूर्ण नाटक-साहित्य विद्रूप का उद्घाटन अन्याय पर करारी चोट या मनुष्य को झकझोर देने की प्रक्रिया का सिर्फ एक लंबा सिलसिला ही नहीं है, यह व्यापक सामाजिक, राजनैतिक गहरे अर्थ संकेतों की संप्रेषक सर्जनात्मक प्रक्रिया का एक अंग है। ऐसी सर्जनात्मक प्रक्रिया तभी तक जीवंत और सार्थक रह पाती है, जब तक कि वह समविष्ट से अपनी ऊर्जा ग्रहण करती रहे। यह सर्जनात्मक प्रक्रिया व्यापक और गहन जीवन-बोध, वैज्ञानिक विश्व दृष्टि, रचनाकार की आस्था और विश्वास पर निर्भर रहती है। अपने आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिवेश के प्रति एक साथ संवेदनात्मक और आलोचनात्मक संवाद स्थापित करती हुई, उसके प्रति सक्रिय होती हुई उसकी विसंगतियों के अहसास को एक तर्कसंगत परिणति प्रदान करती है तथा हमें और अधिक जागरूक और मानवीय बने रहने का सुझाव देती है।

"सामंती अर्द्धसामंती अर्धपूँजीवादी और पूँजीवादी मानसिकता से उत्पन्न विकृत रुचियों को गुदगुदाने के बजाए वह आदमी की चेतना को प्रचार और धारदार बनाने में अपनी सांस्कृतिक, साहित्यिक भूमिका का निर्वाह करती है।"

विकृत यवार्य का खुला चित्रण: अपने नाटकों में अपने परिवेशगत विकृतियों के नग्न चित्र सर्वेश्वर ने प्रस्तुत किए हैं। वस्तुतः "सर्वेश्वर के नाटकों का अपना एक उद्देश्य था-सामाजिक और राजनीतिक जीवन के मुखीटों के भीतर के विकृत एवं कुरूप यथार्थ का पर्दाफाश करना। शोषकों और शोषितों के संबंधों के रूप में समाज की वर्गीय बनावट को व्यक्त करना। ऊपरी तौर पर अपना आदर्श बनाए रखने वाले लोग शोषकों का प्रतिरूप होते हैं, जिन्हें शोषित लोग समझने में असफल

होते हैं। वे उनके बाहरी मुखौटों को देखकर समझ नहीं पाते कि उनके भीतर कुरूपता की कितनी गंदी परत छिपी रहती है। सर्वेश्वर ऐसे ही मुखौटों वाले चेहरों को कितनी बारीकी से बेनकाब कर देते हैं कि समाज दंग रह जाता है। जिस पैनी दृष्टि और साहसपन के खुलेपन का परिचय सर्वेश्वर के नाटकों में मिलता है, वैसा अन्य नाटककारों के नाट्य में दुर्लभ प्रतीत होता है। शोषण विहीन समाज के निर्माण को प्रक्रिया में किसी भी लेखक की रचना-प्रक्रिया, उसके चारों ओर फैली दुनिया और उसकी समझ के आधार पर बनती है। यह समाज में घटने वाली घटनाओं तथा मनुष्यों के क्रिया-कलापों को वैचारिक धरातल पर पकड़ता है। इस प्रकार रचनाओं का यथार्थ जीवन सत्य से उद्भूत होता है।

ऐसा ही लेखक जनता का लेखक होता है। सर्वेश्वर एक ऐसे ही लेखक के रूप में सामने आते हैं। सर्वेश्वर ने इतने कम समय में इतना कुछ लिखा, फिर भी वे अपने लेखन से संतुष्ट न हुए। अपने सपनों का समाज बनाने में वे लगे रहे। उनके नाटकों में उनकी यह कोशिश स्पष्ट दिखाई देती है। ऐसा लगता है कि वह अभी तक जीवित रहते तो बहुत कुछ करके दिखा सकते थे। वे अपने लेखन से पूरी तरह संतुष्ट कभी नहीं दिखे।" उनका यह वक्तव्य इस संदर्भ में उद्धृत करना प्रासंगिक होगा :

"बहुत गहरे उतर कर जब में देखता हूँ तो खुद को न अपने जीवन से संतुष्ट पाता हूँ न अपने लेखन से। हर बार लगता है कि जो में करना चाहता था, नहीं कर सका और जो में लिखना चाहता था, वह अभी तक नहीं लिख सका। एक पंक्ति याद आ रही है, जो मैंने अपने पाठकों से अपने संग्रह 'गर्म हवा' के अंत में कही थी:

"शब्द पड़ने लगे छोटे दर्द बढ़ने लगा।

कहे भी थे जो कभी

सब हो गए अनकहे।"

यद्यपि इतना होने पर भी अपने जीवनकाल में सर्वेश्वर ने जनता के सुख-दुख में अपना जितना योगदान दिया है, अपनी जो भूमिका निभाई है, वह निश्चय ही प्रशंसनीय है। "पिछले दशकों में लिखे गए तथाकथित बाल-साहित्य पर नजर डालने से यह बात सामने आती है कि तब हमारे देश में बाल-साहित्य न के बराबर था। जो कुछ था, वह विदेशी बाल-साहित्य का या तो अनुवाद था या भावरूपांतर। आज दुनिया के लगभग सभी विकसित और विकासशील देशों के पास समृद्ध बाल-साहित्य है, लेकिन हमारे देश में बच्चों के लिए किस तरह का साहित्य लिखा जाए, उसे कभी भी लेखकों, प्रबुद्धजनों एवं शिक्षाविदों ने बहस का मुद्दा बनाने की कोशिश नहीं

को। समकालीन वाल-साहित्य की उपेक्षा में हिंदी के प्रकाशक और लेखक दोनों शामिल हैं। सरकारी खरीद फरोख्त को ही ध्यान में रखकर जीवनी व नकली विज्ञान- कवाओं या सिर्फ लोक कथाओं को ही बाल-साहित्य का प्रमुख अंग मानकर पुस्तकें छापी जा रही हैं। जिनके पास बाल साहित्य की कोई समझ न थी उन्होंने बाल-साहित्य के नाम पर अनाप-शनाप लिखा और बाल-साहित्यकार कहलाने लगे। इस प्रकार के बाल-साहित्य के सरकारीकरण की भ्रष्ट तकनीक ने बाल-साहित्य के मौलिक लेखन को बहुत ज्यादा नुकसान पहुँचाया। परिणाम यह हुआ कि हमारे देश में बाल-साहित्य का लेखन और लेखक दोनों को अपेक्षाकृत हीन स्तर की चीज मान लिया गया। ऐसे बाल-साहित्य की कमी हो गई, जो बच्चों को वैचारिक स्तर पर ऊँचा उठाए। उनको संपन्न करने की बात किसी के दिमाग में आई ही नहीं।

इसका सीधा असर तथाकथित आजादी के बाद जन्मी और पली-बढ़ी हुई पीढ़ी की वैचारिक पृष्ठभूमि में देखा जा सकता है। बच्चों का बचपन या तो परी कथाएँ, लोक कथाएँ, रानी के काल्पनिक किस्से सुनने में बीतता है, जो सामंती संस्कारों को तोड़ने के बजाए उसे पुख्ता करते हैं, अथवा भूत-प्रेतों या दैत्यों तथा जादूगरी की कहानियाँ उन्हें रूमानियत से भटका देती हैं। वैसे तो लोक-कथाओं से बहुत कुछ सीखने को मिलता है-परंतु ऐसा साहित्य जो बच्चों को अजीबोगरीब फैंटेसी के रचना संसार के भौंड़े अनुभव से अथवा कोरी काल्पनिकता व रूमानियत के झूठे संसार से उन्हें मुक्त कर यथार्थवादी सत्य और चेतना के धरातल पर उन्हें बहुत कुछ सार्थक देने में सहायक बन सके, कम है। बच्चों को क्या चाहिए? इस ओर सोचने का ध्यान कम ही रचनाकारों को रहा।

जिन रचनाकारों ने बाल-साहित्य को पूरी गंभीरता के साथ लिखा, उनमें सर्वेश्वर का नाम प्रमुख है। इनकी रचनाएँ बच्चों की जरूरत व सोच के मुताबिक लिखी गई हैं। सर्वेश्वर बाल-साहित्य की विडम्बनाओं से परिचित थे। वे इसे लिखते समय कभी द्वितीय श्रेणी के लेखक हो जाने के अपराध बोध से ग्रसित नहीं थे। सर्वेश्वर अपने बाल-नाटकों में बच्चों को अन्याय से लड़ने और सही बात के लिए रीढ़ सीधी करके खड़े होने के लिए ललकारते रहे। जिस झूठी आजादी की भयावह त्रासदी को बच्चे आगे चलकर भोगेंगे, उसकी असलियत का अहसास बचपन से कराना वे जरूरी समझते थे। सर्वेश्वर को इतिहास और वर्तमान से जूझते समकालीन बाल-लेखकों में महत्त्वपूर्ण बनाने वाला उनका यही यथार्थपरक दृष्टिकोण है।

अपने बाल साहित्य के माध्यम से उन्होंने बच्चों के अंतर्मन में साहस, दया, करुणा, ईमानदारी, सजगता जैसे स्वस्थ मानवीय मूल्यों को स्थापित करने का भरसक प्रयास किया है।

सर्वेश्वर की जनवादी चेतना- सर्वेश्वर एक ऐसे रचनाकार थे, जिनका संपूर्ण साहित्य जनवादी चेतना से गहरे अयों में सम्पृक्त है। उनके बाल-नाटकों में में जनवादी चेतना के वित्र उपलब्ध हैं। बच्चों की मानसिकता को तानाशाहों के खिलाफ तैयार करने की बात शायद सर्वेश्वर ने सबसे पहले सोची। जिन थोड़े से रचनाकारों ने इस दिशा में कार्य किया है, उनमें सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कम रचनाओं के बावजूद प्रमुख हैं। बाल-नाटक 'ताख की नाक', 'भों-भों खों-खों', 'कल मात आएगा', 'अनाप शनाप' आदि में सर्वेश्वर बच्चों में साम्राज्यवादी व भ्रष्ट शासन-व्यवस्था के दुष्प्रभाव से सवेष्ट करते हुए सामंती मूल्यों पर कुठाराघात करते हैं। ये बच्चों को व्यवस्था के प्रति विद्रोह करने की प्रेरणा देते हैं। इन्हें देखकर हम यह कह सकते हैं कि वस्तुतः हिंदी के बाल-साहित्य में जनवादी विचारधारा का विकास सर्वेश्वर में ही होता है। उनकी सभी रचनाओं में जगह-जगह इस तरह के प्रयोग है।" 'भो-भी खो-खों' में तानाशाहों के विरुद्ध लड़ने की जरूरत को समझाने का एक प्रयास दृष्टब

"जिसके हाथ में कोड़ा है

उसे बनाना घोड़ा है।

इसमें 'कोड़ा वाला हाथ' सामंतशाही का प्रतीक है जिसे लड़ाई में पराजित कर घोड़ा बनाने का संकेत किया गया है-यह संकेत अपनी पूरी सम्प्रेषणीयता के साथ आया है, जिसे बच्चे आसानी से समझ कर ग्रहण कर सकते हैं। इस तरह की चेतना के कारण ही सर्वेश्वर कम लिखकर भी श्रेष्ठ बाल-नाटककारों की श्रेणी में आ जाते हैं।

विचारात्मकता : "सर्वेश्वर जब बच्चों के लिए नाटक लिखते हैं तो उनके अनुसार उस समय वे 'खिलौना निर्माण' की प्रक्रिया में संलग्र होते हैं। वे 'लाख की नाक' नाटक की भूमिका में स्वयं स्वीकार करते हैं कि "यदि आप बच्चों के साथ खेल नहीं सकते तो बच्चों के लिए लिख नहीं सकते, चाहे वह नर्सरी की कविता हो चाहे नाटक। यह खेल बच्चे के साथ खिलौना खेलने की तरह नहीं है, बल्कि उसके साथ मिलकर खिलौना बनाने की तरह है

बाल-साहित्य लेखन का कार्य वे पूर्ण सजगता से करते हैं सरलता और सजगता के बीच वे बड़ी-से-बड़ी समस्या पर प्रहार भी करते हैं, जो बच्चों के समुचित स्वस्थ विकास के लिए अत्यावश्यक है। 'लाख की नाक' का उदाहरण द्रष्टव्य है:

"लड़की : बापू कहाँ जा रहे हो?

लोहार: बेटा तलवार बेचने ।

लड़की : राजा के मंत्री के पास ।

लोहार: हाँ उसी के पास जो हमें सताता है।

यद्यपि यहाँ सर्वेश्वर राजतंत्र का विरोध करते हैं जबकि इसके विपरीत वर्तमान औपनिवेशिक शिक्षा-व्यवस्था राजा-रानी के किस्से पढ़ाकर राजा को बेहतर बताती है और इस प्रकार वह राजतंत्र का बखूबी समर्थन करती है। सर्वेश्वर के बाल-नाटकों में उनकी यही चिंता या कोशिश बराबर दिखाई देती है कि बच्चों को प्रतिक्रियावादी विचारों जो उन्हें शिक्षा और परिवार से विरासत में मिलते हैं, से कैसे मुक्त कराया जाए और विकास के अधिकाधिक अवसर उन्हें कैसे उपलब्ध कराए आएँ?

सर्वेश्वर ने अति काल्पनिकता और कोरी किस्सागोई के बजाए यथार्थवादी धरातल पर जीवन के अनुभवों से जूझते हुए बच्चों के रचना-संसार से बाल-पाठकों को परिचित कराया। परियों और राजकुमारों के जादुई कथाओं के तिलिस्म से निकाल कर बालकों को भारतीय जीवन में पल-पल घटने वाले संघर्ष की आग में तपते बालपन की वास्तविकता से परिचित करवाया। इसका उदाहरण दृष्टव्य है-"भों-भों खो-खों से देखो, देखो कितना झूठ बोलता है, हमें बदनाम करता है, जैसे हम भूखे हैं। यह नहीं।

खो-खों: वैसे जितनी रोटी मिलती है खुद खा जाता है।

भों-भों: माँगता हमारे नाम पर, है पर हमें भूखा रखता है।

खो-खों: पैसे जेब में रखता है।

"सर्वेश्वर अपने इस नाटक में भी बच्चों को कल्पना के गह्वरों में घुमाने के बजाए उनको अपने माहौल और परिवेश में घट रही घटनाओं से परिचित कराते हैं। बच्चों के लिए नाटक की कमी को महसूस करते हुए उन्होंने नाटक लिखे जरूर, पर उसमें भी उन्होंने बच्चों से ही सीखने पर जोर दिया।

वे 'भो-भों खो-खों' की भूमिका में स्पष्ट कहते हैं कि "एक बार बच्चों की कल्पना का संसार खोल देने पर बड़ों को कुछ करने की जरूरत नहीं रह जाती, सिवाय उनसे सीखने की। बच्चों को सिखाने से ज्यादा उनसे सीखने का सिलसिला शुरू होना चाहिए।

अपने बाल-नाटक 'भों-भों खों-खों' में सर्वेश्वर ने भों भों तथा खो-खों इन दो पात्रों एवं मदारी के रूप में शासन करने वाले चरित्र की कया को लेकर सम्पूर्ण वर्तमान व्यवस्था में व्याप्त घुटन, हताशा, गुलामी के जीवन की विद्रूपता और इनके कारणों को विश्लेषित करते हुए बच्चों को उनकी भाषा में ही सारी स्थितियों का बेबाक चित्रण किया है। मदारी के खिलाफ एकजुट होकर 'मों-भों खो-खों' द्वारा संघर्ष की ऐतिहासिक जरूरत भी कथानक में है। दरअसल यह पूरा नाटक ही विचारों

की जागरूकता का नाटक है, सोच को विकसित करने का नाटक है जिसका सीध अत्तर बच्चों पर पड़ता है। वस्तुतः भारतीय जनता के उत्पीड़न में धार्मिक अंधविश्वास का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है और है। इनके विरुद्ध वे बच्चों को जागरूक और शिक्षित करते हैं

"नट : हाथ जोड़ने की जरूरत नहीं, हम पूजा नहीं कर रहे हैं।

पक्का इरादा कर रहे हैं।

हाथ हमारे हे मजदूर

पैर हमारे बने किसान

कोई छोटा बड़ा नहीं है।

सर्वेश्वर 'अनाप-शनाप' की भूमिका में लिखते हैं कि "यह नाटक मशीनरी सभ्यता और पूर्वी सभ्यता के टकराव का नाटक है। दोनों मुख्य चरित्रों की आदतें उनके विचार, उनकी दृष्टि अलग है, तीसरा चरित्र उनकी टकराहट का फायदा उठाकर उनको बेकाम कर देने वाला अवसरवादी है।

यह भूमिका उनकी सम्पूर्ण रचना-प्रक्रिया उजागर करती है। उसी रचना-प्रक्रिया को, जिसमें सर्वेश्वर बात-साहित्य को उसकी रुढ़ियों और प्राचीन परम्परागत रूप से तोड़कर जनवादी दिशा प्रदान करते हैं। अनाप-शनाप नाटक के निम्नलिखित उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाती है:

"अनाप पर मकान में खिड़की तो होगी।

शनाप : खिड़की क्या करोगे?

अनाप: हवा और रोशनी के लिए।

शनाप : हम एयर कंडीशन लगाएँगे, ठंडी गर्म जैसी चाहेंगे, हवा अपने आप आयेगी।

अनाप : नहीं खिड़की जरूर होगी वह भी पूरब और पश्चिम की ओर, नहीं पूरब की ओर मेरा गाँव है।

उनके बाल-नाटक बच्चों का मनोरंजन करने के साथ-ही-साथ उन्हें अपने समसामयिक परम्पराओं और परिवेश के प्रति जागरूक बनाते हैं। उनके भीतर सही बौद्धिक चेतना जाग्रत कर उस चेतना को सही राजनीतिक दिशा देने का कार्य करते हैं। उनके बात-नाटकों की यह विशिष्टता हिंदी साहित्य की सर्वोत्तम उपलब्धि कहीं जा सकती है। उन्होंने बाल नाट्य-साहित्य के विकास को सही दिशा प्रदान की है।

नूतन दृष्टिकोण

सर्वेश्वर का नाटक और रंगमंच के प्रति नवीन दृष्टिकोण रहा है। "भारतीय

संदर्भ और हिंदी रंगमंच की मूल प्रकृति के अन्वेषण के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि नाटक का नया रंग-शिल्प उसका सबसे अधिक आकर्षक पक्ष है सर्वेश्वर के नाटकों के द्वारा ही हिंदी नाटक बनावटी मंच और पश्चिमी शिल्प प्रयोगों से हट कर खुलेपन और सहजता, लचीलेपन और परम्परागत लोक-रूपों तक पहुँच सका है। इनके नाटकों से रंगमंच की दिशा बदली जिसके कारण अभिनय-शैली के मानदंड बदले और दर्शकों की बनी बनाई अभिरुचि बदलकर नए संस्कार में दली। भाषागत अभिव्यक्ति में एक स्वाभाविक मोड़ पैदा हुआ। सर्वेश्वर ने पारसी रंग-शैली और हिंदी प्रदेश के लोक-नाटक 'नौटंकी' शैली के मिले-जुले रूप को आधार बनाकर रंग-दृष्टि का परिचय दिया। इनके नाटकों में एक तरफ नौटंकी की तरह नगाड़ा बहरे-तवीत, नट-नटी, गायन-नर्तन- नौटंकी की प्रचलित धुनें, भजन-कीर्तन, गजल, कौव्वाली, फिल्मी धुनों का प्रयोग दृश्यात्मक समस्याओं को हल करने के लिए किया गया है, तो दूसरी तरफ पारसी नाटकों जैसी अभिनयात्मक बीच-बीच में तुकबंदी, पद्यात्मकता भरे संवाद, अतिरंजनापूर्ण अभिव्यक्ति, आकस्मिक चमत्कारिता भी है।

वस्तुतः सर्वेश्वर का नाटककार रूप किसी भी दृष्टि से उनके कवि रूप से कम समृद्धि नहीं है। उन्होंने अपनी नाट्य-प्रतिभा से हिंदी रंगमंच को नवीन दिशा को प्रदान कर उसे व्यापक मोड़ दिया। हिंदी नाटकों को साहित्यिक आडम्बरों के प्रयोगात्मक जाल और पश्चिमी चकाचौंध से निकाल कर परम्परागत रोमांटिक वातावरण से मुक्ति प्रदान करके उसे आम जनता के बीच में प्रतिष्ठित किया। उनका नाट्य-लेखन उन्हें एक श्रेष्ठ बाल नाटककार के रूप में अप्रतिम सिद्ध करता है। अपने बाल-नाटकों में उन्होंने इस तथ्य को हमेशा ध्यान में रखा कि उनके लिखित नाटकों के लिए यथार्थवादी रंगमंच की कोई आवश्यकता नहीं है। वे सदैव कल्पनाशील सादा रंगमंच की मांग को दोहराते रहे हैं। उनकी यह माँग औचित्यपूर्ण इन अयों में है कि बालक एक तिनका पाकर जितनी विराट् कल्पना कर सकता है, उतनी विराद् कल्पना बड़े कदापि नहीं कर सकते हैं। उनके सभी बाल-नाटक बच्चों की मानसिकता को ऊँचा उठाने में उनको विकसित करने में रचनात्मक-चिंतन की दिशा में सोचने के लिए उन्हें प्रेरित करते हैं। सर्वेश्वर का नाटककार व्यक्तित्व आने वाले समय में नए नाटककारों के लिए प्रेरणा स्रोत सिद्ध होगा।

संदर्भ

1 हिंदी का गद्य साहित्य डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 173

2 आधुनिक हिंदी साहित्य डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृ. 228

3 हिंदी साहित्य का इतिहास सं. डॉ. नगेंद्र, पृ. 478

4 बकरी (भूमिका): सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 1

5 वहीं, पृ. 1

6 सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 153

7 बकरी (भूमिका): सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 9

8 आजकल सितम्बर 1980, पृ. 14

9 वही, पृ. 15

10 बकरी (भूमिका): सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 8

11 वही, पृ. 63

12 बही, पृ. 10

13 मुक्ति प्रवेशांक जुलाई 1984, पृ. 127

14 वही, पृ. 69

15 बकरी: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 36

16 लड़ाई: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 28

17 बही, पृ. 4

18 वही, पृ. 128

19 वही, पृ. 9

20 वही, पृ. 10

21 अब गरीबी हटाओ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 30

22 वही, पृ. 7

23 यही, पृ. 7

24 वहीं, पृ. 59

25 भों-भों खों-खों: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 63

26 वाही, पृ. 7

27 लाख की नाक: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 32

28 सर्वेश्वर व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 169

29 मुक्ति प्रवेशांक: जुलाई 1984, पृ. 132

30 वही, पृ. 132

31 आजकल सितम्बर 1980, पृ. 15

32 सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 172

33 अब गरीबी हटाओ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 49

34 सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व

35 समीक्षा के सिद्धांत: डॉ. सत्येंद्र, पृ. 83

36 सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 176 64 /सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : दृष्टि औ सृष्टि

37 समीक्षा के सिद्धांत : डॉ. सत्येंद्र, पृ. 83

38 सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 177

39 काव्यशास्त्र : डॉ. भगीरव मित्र, पृ. 99

40 बकरी : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 51

41 कल भात आएगा : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 16

42 सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्य डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 16

43 बकरी: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 19

44 सहाई (भूमिका): सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 2

45 वही, पृ. 2

46 यही, पृ. 2

47 सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 181

48 अब गरीबी हटाओ: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 61

49 सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्वय डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 181

50 कल भात आएगा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 23

51 सर्वेश्वर : व्यक्तित्य और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 183

52 लाख की नाक सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 25

53 भों-भों, खों-खो, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 7

54 सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 184

55 रंग-दर्शन: नेमिचंद्र जैन, पृ. 57

56 सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 185

57 बकरी : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 2

58 आजकल सितम्बर 1980, पृ. 15

59 बकरी: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 68

60 अब गरीबी हटाओ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 58

61 बकरी: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ 48

62 कत भात आएगा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 16

63 लाख की नाक सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 12

64 बकरी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 29

65 वही, पृ. 28

66 लाख की नाक: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 19

67 वही, पृ. 17

68 सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 191

69 बकरी: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 19

70 भों-भों खों-खों सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 3

71 बकरी: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 53

72 वही, पृ. 18

73 वही, पृ. 20

74 सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 193

75 बकरी: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 48

76 सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 194

77 वही, पृ. 195

78 वही, पृ. 196

79. बकरी: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 6

80. सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 197

81. वही, पृ. 198

82. आजकल सितम्बर 1980, पृ. 15

83. सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 200

84. भों-भों खो-खों: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 32

85. साख की नाक: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ.5

86. वही, पृ. 20

87. सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्य डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 303

88. भों-भों खों-खों सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 20

89. सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 204

90. भों-भों खो-खों सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 8

91. सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 205

92. भों-भों खो-खों: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 28

93. अनाप-शनाप सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 6

94. वही, पृ. 18

95. सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 98

अध्याय-3

सर्वेश्वर का कथा-साहित्य

हिंदी-साहित्य के पाठक वर्ग को सर्वेश्वर की साहित्यिक रचनाधर्मिता ने जहाँ अपनी कविताओं, नाटकों और पत्रकारिता के माध्यम से विविध स्तरों पर स्पंदित और प्रभावित किया, वहीं उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों से हिंदी साहित्य के उसी पाठक वर्ग पर प्रभाव डालने में भी सफल रहे। यह सत्य है कि साहित्य-जगत् में सर्वेश्वर का प्रवेश सर्वप्रथम एक कहानीकार के रूप में हुआ था। उन्होंने अपने प्रारंभिक साहित्यिक जीवन में कुछ कहानियों लिखकर इस विधा में फिर लेखन कार्य नहीं किया। सर्वेश्वर की साहित्यिक चेतना का उत्तरोत्तर विकास कविता, नाटक और पत्रकारिता के क्षेत्र में होता रहा। संभवतः इसी कारण से सर्वेश्वर की चर्चा हिंदी साहित्य में नई कविता के एक प्रतिष्ठित कवि, संघर्षशील लोक-चेतना को उचित रचनात्मक दिशा देने के स्तर पर एक जनवादी नाटककार के साथ-साथ जीवन की छोटी-से-छोटी परिवेशगत घटना को अत्यंत रागात्मकता, सहजता, सहृदयता और मानवीयता के अनेक रंगों से सम्पृक्त कर देखने वाले पत्रकार के रूप में ही अधिक हुई।

कथाकार के रूप में उन्हें कम ख्याति मिली, किंतु यह भी सत्य है कि सर्वेश्वर की रचनात्मक विकास-यात्रा को पूरी तरह से समझने एवं आत्मसात करने हेतु उनके द्वारा रचित उपन्यासों और कहानियों का मूल्यांकन करना आवश्यक है। अज्ञेय के संपादन में प्रकाशित 'काठ की घंटियों' हिंदी जगत् के सामने आने वाली सर्वेश्वर की सर्वप्रथम साहित्यिक कृति है। इसमें सर्वेश्वर की लगभग 20 कहानियाँ, कुछ कविताएँ और एक लघु उपन्यास 'सोया हुआ जल' संकलित हैं। सर्वेश्वर ने जब साहित्यिक जगत् में प्रवेश किया, तो उस समय के परिवेश और स्थितियों पर प्रकाश डालते हुए अज्ञेय जी ने इस संग्रह की भूमिका में लिखा है- "सर्वेश्वर उन लोगों में से हैं, जो पहले एक कहानीकार के रूप में सामने आए। सन् 1943 में उन्होंने कविता लिखनी आरंभ की तीन-चार वर्ष के काव्यमय अंतराल के बाद उन्होंने फिर कुछ कहानियों लिखीं। 'सोया हुआ जल' नामक लघु उपन्यास या लंबी रूप कथा भी इसी समय

लिखी गई। इसके अनंतर फिर चार-पाँच वर्ष का काव्यांतराल रहा, जिसके बाद फिर कुछ कहानियाँ और एक नया उपन्यास 'पागल कत्तों का मसीहा' लिखा गया

अज्ञेय जी ने सर्वेश्वर में दिखाई पडने वाले इन आरंभिक माध्यमगत परिवर्तने को उनके सृजनकार व्यक्तित्व में संवेदना के प्रारंभिक बदलाव के रूप में चिस्ति किया। वे लिखते हैं "प्रत्येक सोपान की रचनाएँ पढ़ने के उपरांत यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक ने न केवल माध्यम बदला है. बल्कि उसकी संवेदना का स्तर और उसकी दिशा बदल गई है। इस प्रकार कहानी-लेखक कुछ वर्ष कविता लिखकर जब फिर कहानी की ओर लौटता है तो फिर उसी सूत्र को नहीं उठाता जिसे वह छोड़ दिस का बल्कि एक नए प्रदेश में नई राह पर चलते हुए अपने को पाता है। इस प्रकार जब कवि गद्य लेखन के अंतराल के बाद फिर काव्य-क्षेत्र में लौटता है, के वह भी एक नए आयाम में।""

हिंदी कवा-साहित्य में स्विति

आधुनिक काल में कहानी को हिंदी साहित्य की एक प्रमुख विघा के रूप में स्थापित करने वाले कहानीकारों में चंद्रघर शर्मा 'गुलेरी', प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद जैसे मूर्धन्य एवं यशस्वी लेखकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। हिंदी-साहित्य के समीक्षकों और इतिहासकारों ने इन लेखकों के नाम पर ही कहानी युगों का मूल्यांकन किया, जिससे कहानी-साहित्य की विकास-यात्रा में इनके महत्त्वपूर्ण योगदान को रेखांकित किया जा सके। कहानी आधुनिक काल की एक लोकप्रिय विधा के रूप में उत्तरोत्तर विकसित होती गई।

अपने लेखन से कथा-साहित्य को स्थापित एवं इसकी श्रीवृद्धि करने वाले साहित्यकारों के नाम पर ही कहानी-युगों का नामकरण हुआ है। इन्हें प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंदयुग और प्रेमचंदोत्तर काहनीयुग जैसे नामों से अभिहित किया जाता है। कहानीकार के रूप में सर्वेश्वर का संबंध प्रेमचंदोत्तर कहानी युग से जुड़ा है। सन् 1943 से 1950 तक की अवधि में सर्वेश्वर ने कहानी-लेखन किया। इसी समय द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ था। इस विश्वयुद्ध का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव न्यूनाधिक विश्व के अनेकानेक राष्ट्रों पर पड़ा। यद्यपि विश्वयुद्ध की समाप्ति हो चुकी थी, तथापि यह सारे संसार की चेतना का केंद्र-बिंदु बन गया था। भारत को आजादी इसी विश्वयुद्ध के बाद मिली।

आजादी के साथ ही देश ने विभाजन के अनचाहे दंश को झेला। परिणामस्वरूप पूरे देश में सांप्रदायिक दंगे शुरू हुए, जिसने हमारी राष्ट्रीयता की पोल खोल दी। दंते के फलस्वरूप राष्ट्र की भारी आर्थिक एवं जनहानि हुई। इस समय तक राष्ट्र में

सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक मूल्यों का अवमूल्यन चरम सीमा पर पहुँब चुका था। भीतर-ही-भीतर इन सारी घटनाओं ने जनमानस को यथार्थ के प्रति अार्दिक जागरूक एवं सचेत बना दिया। जनता द्वारा यथार्थ की इसी व्यापक स्वीकृति को आधार बनाकर इस काल के कहानीकारों ने श्रेष्ठ कहानियों लिखीं। जनवरी 1954 में पकहानी' पत्रिका का प्रकाशन हुआ, जिसमें एक वक्तव्य में कहा गया कि "आज जीवन की विविधता और समस्याओं की जटिलता के हर पहलू को हिंदी-कहानी ने अपने में आवेष्टित कर लिया है। शिल्प-कहानी 12 वर्ष पहले की हिंदी-कहानी से कहीं आगे है।""

जिन कथाकारों ने इस 'आगे की कहानी' को लिखने और समृद्ध करने में विशेष योगदान दिया, उनमें मोहन राकेश, मार्कडेय, फणीश्वरनाथ रेणु, राजेंद्र यादव, धर्मवीर भारती, भैरव प्रसाद गुप्त, विष्णु प्रभाकर, अमृत राय, उया प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा-सोबती, शिव प्रसाद सिंह, शैलेश मटियानी, शरद जोशी के साथ-साथ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा आदि का योगदान भी स्वीकार किया गया।" डॉ. रामचंद्र तिवारी का मानना है कि "सन् 1959 ई. की 'आगे की कहानी' सन् 1960 ई. तक आते-आते 'नई कहानी' बन गई।"

सन् 1960 ई. से 'नई कहानियाँ' नामक पत्रिका श्री भैरव प्रसाद गुप्त के संपादकत्व में प्रकाशित होने लगी। राजेंद्र यादव ने इसके वर्षगाँठ विशेषांक में 'आज की कहानी' परिभाषा और नए सूत्र शीर्षक में लिखा- "कचाकार व्यक्ति को उसकी समग्रता में देखने का आग्रह करता है। व्यक्ति को उसके सामाजिक परिवेश, मानसिक अंतद्वंद्वों तथा व्यावहारिक जीवन के तकाजों और आवश्यकताओं की एक संश्लेषण प्रक्रिया के रूप में पाना उसका लक्ष्य है।"*

यह सत्य है कि सर्वेश्वर की मूल संवेदना, वस्तुतः एक कवि की ही है, किंतु कथा-लेखन के क्षेत्र में उनको इस संवेदना से भी पर्याप्त प्रेरणा मिली है। काव्यात्मक संवेदना और कथात्मक संवेदना के अंतर को स्पष्ट किया जाना आवश्यक है- "काव्यात्मक संवेदना का कहानी के संदर्भ में लगभग गाली के तौर पर इस्तेमाल होता है। सच तो यह है कि हम लोगों (मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा) की कहानियों में वह एक अतिरिक्त गठन है, जो भाषा और कया-रूप के तत्त्वों को सूक्ष्मता से पकड़ने और रचनात्मक रूप से इस्तेमाल करने से आती है।""

सर्वेश्वर ने 'नई कहानी' के समर्थकों पर यह आरोपण किया कि "इसी अतिरिक्त गठन के कारण-कवि कथाकारों की कहानियों को नई कहानी के आंदोलनकर्ताओं ने आँखों से दूर रखा, क्योंकि गौर से देखते, तो ये कहानियाँ उनकी

आँखों में चुभती। गुलकी बन्नों', 'सोया हुआ जल', 'पागल कुत्तों का मसीहा' आदि सामान्य कहानियों नहीं थीं, उनकी असाधारणता को ये लोग काव्यात्मक संवेदना कहकर टाल देना चाहते थे। दरअसल यह इन आंदोलनकारियों की समझ और रचना-समता के परे की बात है। अपनी अक्षमता दूसरे का दोष बना दी जाती है।

सर्वेश्वर कहानी-जगत् में पर्याप्त स्थान नहीं पा सके। इसके कारणों को वे इन्हों आलोचकों और आंदोलनकारियों की समझ और सृजनात्मक क्षमता को अक्षमता को रूप में देखते हैं। इतना ही नहीं नई कहानी' आंदोलन की असफलता के पीछे भी वे इन्हीं को दोषी सिद्ध करते हुए कहते हैं, "नई कहानी आआंदोलन, जो देखते ही देखते दाँच टॉक-फिस्स हो गया, तो कारण यही था कि रचनात्मक दृष्टि टुकड़ों में बंटी हुई थी। काव्यात्मक-संवेदना स्थिति या चरित्र को गहराई में जाकर, यथार्थ और भौगोलिक परतों को उपाड़ती हुई, उसे छिलकों के नीचे छिपे मानवीय-निर्यात से जोड़ने का प्रयास करती है। जबकि कथात्मक संवेदना इसका विलोम है। यानी चरित्र और स्थिति की भांबरी पकड़ का नाम कथात्मक संवेदना है। कहानी को इससे बचाना होगा, नहीं तो कहानी रचनात्मकता के स्तर पर नष्ट हो जाएगी। सभी महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ कथाकारों की रचनात्मक संवेदना में काव्यात्मकता के समावेश को सर्वेश्वर स्वीकारते हैं।

श्रेष्ठ कथाकार

यद्यपि एक श्रेष्ठ कथाकार के रूप में सर्वेश्वर को मान्यता नहीं मिली, तथापि एक श्रेष्ठ कथाकार की पहचान उन्हें अवश्य थी। वे एक श्रेष्ठ कथाकार के मानक से भी भली-भांति परिचित थे। एक श्रेष्ठ कथाकार में किन विशेषताओं का समावेश होना चाहिए, इस संबंध में उन्होंने राजी सेठ की 11 कहानियों के संकलन-'अंधे मोड़ से आगे' की समीक्षा में अपने विचार व्यक्त किए हैं। आज की कहानियों के कथा-विन्यास में जो शिल्पगत जटिलता पाई जाती है, उसे दूर करने के लिए सर्वेश्वर समर्थ और सधी हुई भाषा के प्रयोग पर बल देते हैं। वे स्वयं इस संबंध में कहते हैं-"जैसे स्वरों का सही लगाव संगीत द्वारा भावों को सघन करता है, वैसे ही शब्दों का सही लगाव भाषा द्वारा। इसमें शब्द-सामर्थ्य ही अकेले काम नहीं देता। उसका सही प्रयोग सधे हुए सुर जैसा जरूरी हो जाता है। राजी सेठ ने भाषा के इस सांगीतिक घनत्व के महत्त्व को समझा है, जिससे उनकी कहानियों अनूठी और जानदार हुई हैं। सर्वेश्वर की दृष्टि में मानवीय चेतना के सूक्ष्मतम स्तरों को पकड़ने की कोशिश में जो कथाकार चित्रण हेतु जटिल बनावट और अमूर्तता को अनिवार्य मानते हैं, वे फैशनपरस्त हैं। इस फैशनपरस्ती के बिना भी अच्छी कहानी लिखी जा सकती है। किसी अच्छे कथाकार की पहचान अमूर्तता और कथानक की जटिल बुनावट पर

निर्भर नहीं होती। सर्वेश्वर बलपूर्वक कहते हैं- "मोपासों और चेखव जैसे कथाकारों ने भी सुक्ष्मतम का चित्रण किया है, लेकिन उनकी बुनावट जटिल नहीं है। इसीलिए वह अच्छे कथाकार ही नहीं, बड़े कथाकार भी हैं।"

सहजता और सादगी की साधना के आधार पर ही अच्छा कथाकार बड़ा कथाकार बन सकता है। "सादगी और सहजता बड़े कथा कलाकार की पहचान हमेशा से रही है और रहेगी। सूक्ष्म की पकड़ से या अमूर्तता से भी इसका कोई पैर नहीं है।" "नए कलाकारों को सूक्ष्म की पकड़ और अमूर्तता को अपनी कमजोरी के लिए ढाल नहीं, अपनी उपलब्धि का हथियार बनाना होगा और यह मानकर चलना होगा कि अमूर्त की साधना यथार्थ से भागना नहीं, उसमें आत्मलय होना ही है।"

कहानीकार के रूप में

सर्वेश्वर के कहानी-संग्रह 'कच्ची सड़क' और 'अँधेरे पर अँधेरा' शीर्षक से प्रकाशित हैं। सर्वेश्वर के कथा-साहित्य में यथार्थ को व्यापक स्वीकृति मिली है। इसमें परम्परा से हटकर यथार्थ चित्रण किया गया है। इनके कथा-साहित्य की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि इसमें व्यक्ति को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया गया है। एक ओर परम्परागत मूल्यों का, छिछली भावुकता का हास दिखाई पड़ता है, तो दूसरी ओर अनेक अंतर्द्वद्धों का चित्रण है जो मध्यवर्गीय जीवन-चेतना से गहरा सरोकार रखते हैं। इनकी कहानियों में जटिल कथा-विन्यास के साथ ही साथ शिल्पगत सांकेतिकता देखने को मिलती है।

हिंदी-साहित्य में आदर्श की मनोरम कल्पना का कुहासा तो प्रेमचंद-युग के उत्तरार्द्ध से ही हटने लगा था। यथार्थ की कठोर भावभूमि पर कथा लेखन होने लगा था। साहित्य में स्वीकृति और अस्वीकृति के अंतर्द्वद्वों के बीच बहुत समय तक यथार्थ का बोध नहीं टिक सकता। परिणामतः हिंदी कहानी-लेखन में यथार्थ को स्वीकार करने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर विकसित होती चली गई। साहित्य में यथार्थ अनुभूतियों को व्यापक स्वीकृति स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से मिलने लगी। विविध रूपों में यथार्थ का यह बोघ तत्कालीन कथा-साहित्य में उपलब्ध है। कहीं पारिवारिक विघटन के रूप में कहीं नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के हास के रूप में, कहीं व्यक्ति-मन के अवसाद व उनकी कुंठा के रूप में यथार्थ का यह बोध दृष्टिगत होता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व जनता को स्वप्न दिखाए गए थे, कि आजादी के बाद राष्ट्र में भयमुक्त, सर्वहारा समाज की स्थापना होगी। सबको शिक्षा, आवास, वस्त्र मिलेगा। कोई किसी का शोषण नहीं करेगा। किसी भी तरह का भेदभाव समाज में नहीं होगा। किसानों और गरीबों को बड़े-बड़े स्वप्न दिखाए गए थे। 15 अगस्त,

1947 को हमारा देश आजाद तो हो गया किंतु जो स्वप्न जनमानस को दिखाए गए थे, वे आज भी स्वप्न ही हैं। झूठे वादों और नारों से आम आदमी का मोहभंग हो चुका एक कहानी में सर्वेश्वर ने न सिर्फ है। इस भोसे जुड़ी तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों को भी पूर्ण ईमानदारी से व्यक्त किया है।

"लड़ाई' सर्वेश्वर की एक प्रसिद्ध कहानी है, इसका नायक सत्यव्रत शर्मा समाज में व्याप्त विसंगतियों और तमाम कुरीतियों से लड़ने का दृढ़ संकल्प लेकर संघर्ष करता है। इस संघर्ष का परिणाम यह रहा कि परिवेशजनित परिस्थितियों से वह बुरी तरह परास्त होकर दम तोड़ देता है। कथा-नायक सत्यव्रत शर्मा के इसी यक्तत्व से तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों की यथार्थता स्पष्ट हो जाती है- "तुम अपनी पत्रिका पर सत्यमेव जयते लिखते हो, पर क्या यह नहीं मानते कि अंत में सत्य की विजय होगी?" उसने कहा। उस आदमी ने थोड़ा रुककर पीछे घूमकर जवाब दिया- 'सत्यमेव जयते' तो सारा देश लिखता है। कहाँ 'सत्यमेव जयते' नहीं लिखा है? लेकिन सत्य वह डाल है, जिसे लेकर हम झूठ की लड़ाई लड़ते हैं। आजादी के बाद यही हमने सीखा है, यही सिखाया गया है। उसने देखा, एक सरकारी इमारत पर मोटा-मोटा लिखा हुआ था- 'सत्यमेव जयते।' उसे लगा कि एक घायल, पराजित, वृद्ध योद्धा की तरह उसी इमारत के पीछे मरा पड़ा है।"

कहानी के नायक सत्यव्रत ने अपने परिवेश और समाज में प्रत्येक स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार, संवेदनहीनता और मूल्यहीनता को देखा और महसूस किया। स्कूलों और कॉलेजों में विद्यार्थियों के प्रवेश की क्षुद्र राजनीति के स्तर पर, सरकारी विभागों में दिखने वाली उदासीनता और भ्रष्टाचार के स्तर पर अस्पतालों में धनकुबेरों के साथ सहयोग एवं सहानुभूति तथा दयनीय आर्थिक संकट से जूझ रहे आम आदमी के अपमान और असहयोग के स्तर पर। हर स्तर पर 'सत्यमेव जयते' की वास्तविकता को समझने के बाद नायक हताशा से ग्रस्त है। वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था जिसमें कहने के लिए आम जनता ही मताधिकारों के बल पर अपनी इच्छा से सरकार चुनती है, उसी व्यवस्था ने आम आदमी को भयाक्रांत कर, उसे असुरक्षित भविष्य की ओर धकेल दिया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि सर्वेश्वर ने 'लड़ाई' कहानी को नाटक के रूप में रूपांतरित करके 'लड़ाई' शीर्षक से ही एक नाटक भी लिखा था। इस कहानी के कथ्य की विशिष्टता एवं शिल्पगत सौंदर्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सर्वेश्वर की कहानियाँ जनमानस की चेतना पर व्यापक प्रभाव डालने में समर्थ हैं।

सर्वेश्वर की 'तीन लड़कियाँ एक मेंढक' शीर्षक कहानी में तीन लड़कियों का वर्णन किया गया है। तीनों लड़कियों के तीन प्रेमीगण भी हैं। अपनी आकांक्षाओं का

इजहार वे अपने प्रेमियों से करती हैं। लड़कियों की मूल समस्या एक ही जैसी हैं। दे समझ नहीं पातीं कि उनकी समस्याओं का समाधान कैसे संभव होगा? संवेदनात्मक स्तर पर वे तीनों एक ही भावभूमि पर स्थित हैं- "फिर तीनों चुप हो गई, संवेदना से मरी एक दूसरे से सटने लगीं- इतनी कि एक दिखाई देने लगीं। उसी समय मेंढक बाहर से उछलता हुआ कमरे में आया। वह आकार में बड़ा था और वह काफी ऊँची छलांग मार रहा था। उन्हें लगा कि जैसे वह उन्हें देख रहा हो और पास आना चाहता हो। यह जानकर तीनों हंस पड़ीं, इतना हँसी कि लोटपोट हो गई।""

मेंढक ने जैसे ही सजे-सजाए कक्ष में प्रवेश किया, वैसे ही तीनों प्रेमिकाएँ उसे पकड़ने में एक-दूसरे से होड़ लगाने लगीं। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, किंतु मेंढक उनकी पकड़ में नहीं आ सका। अंततः टरे-टर्र करता हुआ मेंढक छलांग मारकर कमरे से बाहर निकल गया। तीनों लड़कियों की विवशता एवं पराजय बोध को व्यक्त करते हुए सर्वेश्वर लिखते हैं, "एक पराजय-बोध से वह तीनों फिर एक दूसरे से सट गई, जैसे अपनी-अपनी प्रेम-कहानी की सुखद परिणति के उपाय सोचने की विवशता से भर गई हों।"

कहानीकार ने मनुष्य की सामान्य आकांक्षाओं को जिस तरह से हास्यास्पद बनाकर प्रस्तुत किया है, उससे यह प्रतीति होती है कि जैसे उनकी आशा-आकांक्षाओं की पराजय को अपनी विजय गाथा के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। पराजय-बोध, कुंठा, विवशता, संत्रास और घुटन आदि से क्षुब्ध और अस्त आम आदमी की कमजोर प्रस्तुति सर्वेश्वर की अनेक कहानियों में मिलती है।

'पराजय का क्षण' शीर्षक कहानी में उन्होंने आदमी को जीवन की स्थितियों से इतना तुच्छ एवं छोटा दिखाया है कि जीवन का एक सही निष्कर्ष भी उसे झूठा ही प्रतीत होता है। यह छोटा आदमी प्रत्येक क्षण अँटता है, पराजित होता है, सही निष्कर्षों की तलाश में वह नाना प्रकार के तकों एवं प्रयत्नों के बाद भी पराजित होकर गिरता है। इस कहानी का 'मैं' स्वयं ही कहता है: "मेरे भीतर बहुत साधारण आदमी, जिससे में घृणा करता हूँ, लेकिन हर क्षण पराजित होता हूँ।"*

जीवन में जब भी अन्याय के प्रतिकार और संघर्ष के लिए सर्वेश्वर सत्य की आवश्यकता का अनुभव करते हैं, वह उन्हें वहाँ उपलब्ध नहीं हो पाता है। इसी के साथ ही जहाँ वे सत्य की रक्षा के लिए जीवन की आवश्यकता को अनुभव करते हैं, वहाँ उन्हें उसके संबंधों की निरर्थकता दिखाई पड़ती है। सर्वेश्वर के बाहर और भीतर निष्ठा और सामर्थ्य का यह द्वंद्व चलता रहता है। 'एक बेवकूफ चिड़िया' नामक कहानी में यह द्वंद्र स्पष्टतः देखा जा सकता है, जहां अपनी पत्नी को समझाते हुए कहता है- "में चाहता हूँ कि तुम निष्ठा ही नहीं सामर्थ्य को भी मानो। इसकी

खोज खत्म हो गई है-निष्ठा सामर्थ्य का विराम बन गई है। एक फैली जगह प लेने को सामर्थ उसमें है, पर निष्ठा के नाम पर वह अपने सामयं को पहचानने की शक्ति खो चुकी है। यह मैं समझ नहीं पाता।

सर्वेश्वर ने अपनी कहानियों में परिवेशगत जीवन-संदभों में निहित सुख-दुख प्रेम-पूण सत्य-असत्य, जय-पराजय, स्वीकृति-अस्वीकृति, निष्ठा-सामर्थ्य के अंतर्द प्रेम मुख्य विषय बनाया है। यथार्थ को उसके व्यापक प्रतिफलन के रूप में से काश्वर ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है। साथ ही उसकी परिणति से उपने अंतइंडों में उलझी व्यक्ति-चेतना को युग-संदभों से सम्बद्ध किया है। मध्यवर्गीय जीवन-चेतना की सुंजपुंज मनःस्थितियों के यथार्थ चित्र इन कहानियों में मिलते हैं किंतु सर्वत्र निराशा एवं पराजय-बोध के चित्र नहीं हैं। व्यवस्था से संघर्ष करने की प्रेरणा देने वाली कहानियों भी उन्होंने लिखी हैं। आज के कहानीकारों के समग्र बोय को रेखांकित करते हुए राजेंद्र यादव लिखते हैं-

"अगर शुभ महान और झूठा है, अगर पारिवारिक, नैतिक और सामाजिक संबंध विखर रहे हैं, अगर व्यक्ति हार और टूट रहा है, अगर आदमी क्षुद्र और ओण है और अगर सामने कोई रास्ता नहीं है, तो वही सही है। उसे वही सब स्वीकार है। वही उसकी रचनाओं से उभरे, वही उसकी कूची और कलम से आए; बिना किसी लाग-तपेट के निर्ममता और तटस्थता के साथ अब कोई रेशमी पर्दा नहीं, कोई अपराध-भाव या पलायन नहीं, कोई खेद और क्षमा नहीं "वास्तविक सघा हुआ है और घुट रहा है, वह मुक्त होकर हमारे सामने आवे, यही उनका आग्रह है और इसी में सफलता, उसके निकट साहित्यिक कृति की सफलता है। इसलिए जहाँ उनकी रचनाओं में परिस्थितियों के प्रति विद्रोह का भाव और परिवर्तन की आकांक्षा है, वहाँ यह स्पष्ट है कि वह बाहर को बदल देने से ही संतुष्ट नहीं है। उसकी व्यर्थता समझते हुए वे भीतर से बदलने पर बल देते हैं।"

राजेंद्र यादव की दृष्टि से यदि सर्वेश्वर की कहानियों पर दृष्टिपात करें तो उनके माध्यमगत साहित्यिक अंतर्विरोध सुलझ जाते हैं। उनके काव्यात्मक संवेदना का एक दृष्टांत प्रमाण स्वरूप द्रष्टव्य है- "कोई विश्वास करे या न करे, लेकिन मैं सच कहता हूँ कि उसका कुल इतना ही दोष था, कि वह गोरी न थी। वह किसी अभिशाप की बदली की झाई-सी साँवली थी। यों उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं। अपनी बंद पत्तकों को जब खोलती थी तो लगता, जैसे सपनों की पंखुरियों पर मासूमियत लहरा गई हो। मुस्कुराती थी, तो जैसे बेबसी की जंजीरें टूट रही हों और बोलती थी तो उत्त स्पंदनहीन, शांत मधुर, स्वर को सुनकर लगता, जैसे किसी खामोश गहरे नीले समुद्र में चाँद डूब रहा हो।"

मूलतः कवि होने के साथ ही साथ सर्वेश्वर एक गद्यकार भी थे। हिंदी गय की विविध विद्याओं की मूल संवेदना और उसकी बनावट आदि से उनका गहरा परिचय और तादात्मय था। शायद इसी कारण से सर्वेश्वर काव्यात्मक और कथात्मक तत्त्वों में एक प्रकार का औचित्य तथा एक जैसी संवेदना के पक्षपाती थे। अपने एक साक्षात्कार में वे स्वीकारते हैं कि जीवन की समग्रता ही संवेदना है। कथा का टुकड़ा जब पूरी मानवीय नियति के साथ अपने भाव-संदर्भ में भीतरी पर्तों समेत उघाड़कर देखा जाता है, तो काव्यात्मक संवेदना में परिणत होता है। इसके बिना कहानी एक संकुचित चीज रह जाती है।" सभी बड़ी और महत्त्वपूर्ण कहानियाँ काव्यात्मक संवेदना की कहानियों हैं, जिनमें मैं 'कफन' को भी गिनता हूँ। अपनी बात पर अधिक बल देते हुए वे कहते हैं कि "आज के यथार्थवादी साहित्य की भीतरी कमी यह है कि वह यथार्थ की भीतरी पतों तक जाने में असमर्थ है और स्वयं अपने लक्ष्य को पराजित करता है।"

उनकी यह काव्यात्मकता 'काठ की घंटियाँ' संग्रह की प्रायः सभी कहानियों में देखी जा सकती है। 'कमला मर गई', 'डूबता हुआ चाँद', प्रेम विवाही', मौत की छाया, स्नेह और स्वाभिमान, मौत की आँखें, बरसात अब भी आती है, सीमाएँ आदि कहानियों में विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

'स्नेह और स्वाभिमान' शीर्षक कहानी में सर्वेश्वर ने संतरा बेचने वाली एक बच्ची के स्वाभिमान को अपनी इसी काव्यात्मकता से व्यक्त किया है: 'गाड़ी की रफ्तार बढ़ती जा रही थी और में उमड़े हुए हृदय से उसकी ओर एकटक देख रहा था। उसकी आँखों में स्वाभिमान था। उसके पतले-पतले 'अघरों' पर एक स्नेह से भीगी हुई मुस्कान। मैंने स्नेह और स्वाभिमान के प्रतीक उस संतरे की ओर एक क्षण को देखा और दूसरे क्षण उस वालिका की ओर, जो प्रतिपल बढ़ती हुई दूरी के कारण अस्पष्ट होती जा रही थी। मेरे कानों में कोकिल के कंठों सी मिठास भरी यह स्वर लहरी अब भी गूंज रही थी। "तुसी मेरे वीर होये नो, तुसी लै जाव"

उनकी काव्यात्मकता का यह सुमधुर स्वर विम्यों, प्रतीकों और संकेतों के माध्यम से परवर्ती कहानियों में व्यक्त हुआ है।

'अँधेरे पर अँधेरा' कहानी संग्रह इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। प्रतीकात्मकता इस संग्रह की अधिकांश कहानियों में देखने को मिलती है। सर्वेश्वर की कहानियों में यह विशेष रूप से ध्यातव्य है कि शिल्पगत स्तर पर अभिव्यक्त सौंदर्य कथा के प्रभाव को निश्चित रूप से बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है। शिल्प की नवीनता का जन्म तभी होता है जब रचनाकार अपने भीतर नए कथ्य का अनुभव करता है। इनकी बाद की कहानियों में शिल्पगत नवीनता कथ्य की नवीनता का अनिवार्य परिणाम

है। परिवेश और जग-जीवन के विविध सदभों और इंद्रों की अभिव्यक्ति के लिए सर्वेश्वर ने उचित बिम्बों, संगीत-ध्वनियों, रूपात्मक चित्र प्रतीकों और उचित संकेतों का सुंदर प्रयोग किया है। तीन लडकियाँ एक मॅटक 'टाइमपीस', 'मरी मछली का स्पर्श', छाता, एक वकूफ चिडिया' जैसी कहानिया इसका स्पष्ट प्रमाण देती हैं।

उपन्यासकार के रूप में

सर्वेश्वर ने यो उपन्यासों की रचना की थी। इन दोनों उपन्यासों - 'सोया हुजा जात' और 'पागल कुत्तों का मसीहा' में यथार्थ के विविध रूपों को उद्घाटित किय गया है। दोनों ही उपन्यासों में उद्घाटन की प्रक्रिया में एक प्रकार के अराजक्तालय कच प्रतिष्ठा हुई है। सर्वेश्वर ने वास्तविकता के भ्रमों का उद्घाटन 'सोया हुआ जव में एक विशिष्ट औपन्यासिक शिल्प के माध्यम से किया है। यह विशिष्ट औपन्यासिक शिल्प उनके अपने चुनाव और संयोजन पर आधारित है। उपन्यास इं मुख्य पात्र दिनेश को इस संयोजन में अराजकतावादी के 'टाइप' के रूप में चित्रित किया गया है। कुछ आलोचकों की दृष्टि में यह व्यक्तिवादिता का आदर्शवादी रूपांतरण है। यथार्थ और आवर्श, सत्य और स्वप्न, भीतर और बाहर, आत्मा और शरीर के द्वैत के बंद के आधार पर ही इस उपन्यास का शिल्प और कथ्य निर्मित हुआ है। यथार्य का विश्लेषण उपन्यासकार ने अतृप्त इच्छाओं के मनोवैज्ञानिक तकों के आधार पर किया है। आजादी के बाद व्यवस्था से जनमानस के मोहभंग को भी इससे समझा जा सकता है।

डॉ. सत्य प्रकाश सिंह इस उपन्यास को समीक्षा में निष्कर्ष देते हुए लिखते हैं कि "इस उपन्यास में यथार्थ का उद्घाटन जिन पात्रों के माध्यम से हुआ है, वे पूरे विश्व के नहीं हैं, बल्कि मध्यवर्ग के वे लोग हैं जो शीघ्र ही संपन्न होकर सब कुछ पा लेना चाहते हैं। इसी के साथ रचनाकार का एक पूर्वाग्रह भी प्रकट हुआ है, वह है, कम्युनिस्ट विरोधी दिनेश के द्वारा कम्युनिस्टों को नीच कहलवाना, रचनाकार के स्खलन का संकेत करता है। उपन्यास के शिल्प, तेवर और बनावट के तर्क से वे अंश उपन्यास को भी कम्युनिस्ट विरोध का उपन्यास बना देते हैं।"

जिस प्रकार कहानी के क्षेत्र में आलोचकों ने सर्वेश्वर में कोई विशेषता रेखांकित नहीं की, कुछ वैसी ही स्थिति उनके उपन्यासों की भी रही है। सर्वेश्वर की असमर्थ औपन्यासिक उपलब्धि को ही डॉ. सत्य प्रकाश सिंह ने उपरोक्त उद्धरण में रेखांकित किया है। जिस समय यह उपन्यास सर्वेश्वर ने लिखा था, उस समय की दृष्टि से यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस उपन्यास में यथार्थ को जिस सामाजिकता के आधार पर चित्रित किया गया है, वहीं इसकी शक्ति का मूल स्रोत है। वस्तुतः कम्युनिस्ट विरोध के पूर्वाग्रह को उपन्यास में आरोपित करना इसकी सीमा है।

'सोया हुआ जल' की तुलना में 'पागल कुत्तों का मसीहा' का कथानक अच्छा है। हालाकि दोनों की मूल संवेदना एक-सी है। इसका प्रस्तुतिकरण उतना सशक्त कहीं है जितना कि वर्णनात्मक पक्ष। यही वर्णन उपन्यास में आंतरिक बनावट का पाक है। लेखक ने इस उपन्यास में आत्मशांति के पर्याय के रूप में धर्म को प्रस्तुत किया है, साथ ही इसे अंधविश्वासों की संकुचित परिधि से बाहर लाने का प्रयास किया है। उपन्यास में 'दीनू' नामक पात्र के माध्यम से भारतीय समाज के बहुत बड़े वर्ग की विवशता का यथार्थ चित्र खींचा गया है:

"मैं समझ पाता हूँ। जब भी मैंने इस कुत्ते के सामने हाथ जोड़कर शीश झुकाया है, मैंने अपने पर लानत भेजी है। में जानता रहा कि वह पागल कुत्ता ही है फिर भी मैं विवज्ञ रहा हूँ। भावी के भय से ग्रस्त होने के कारण ही मेरा शीश अपने आप झुक गया है। शायद आने वाली विपत्ति टल जाए। शायद कोई विपत्ति आने वाली हो। तब यह काटने का न रहे कि मैंने यहाँ पर सर नहीं झुकाया था। यह तो मोह नहीं है, यह श्रद्धा भी नहीं है, यह डर है डर, वर्तमान से डर, भविष्य से डर, विपत्तियों से डर। विपत्ती, में कहता हूँ कि कहीं-न-कहीं वह डर ही है, जो हमसे किसी की पूजा करवाता है।""

उपन्यास में व्यक्त हुआ यह कथन उसे सार्थकता तो प्रदान ही करता है, साथ ही वस्तुस्थिति की संवेदनात्मक साक्ष्यों से संबद्ध कर प्रस्तुत करता है। इस कारण यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण बन गया है। "यह कहानी न तो केवल दीनू और विपती के अव्यक्त प्रेम और स्त्री की ईर्ष्या की ही कहानी है और न प्रतीकात्मक दृष्टि से आत्मबलिदान अथवा निराशा की ही, बल्कि सामाजिक-जीवन को कई अर्थों में स्पष्ट करने वाली कहानी है। इसके प्रस्तुतिकरण और उद्घाटन के मूल में भी विद्रोह का स्वर ही मुख्य है। यद्यपि इसमें अशिव, असामाजिक और असुंदर को समाप्त करने को भी धर्म माना गया। साथ ही सामाजिक नियमों और पाबंदियों के विरुद्ध प्रतिक्रिया का भाव भी इसमें है।"

सर्वेश्वर के सम्पूर्ण कथा-साहित्य पर दृष्टिपात करने के पश्चात् निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि "उनकी संवेदना मूलतः एक ही है, जो व्यवस्था की अनेक विसंगतियों से समझौता न करके उनसे विद्रोह प्रकट करती है। यह विद्रोह ही उनकी कविताओं, नाटकों, कहानियों व उपन्यासों में सर्वत्र माध्यमगत या विधागत परिवर्तनों के साथ अपने सम्पूर्ण यथार्थ में पाठक समुदाय के समक्ष उपस्थित होता है। भले ही आलोचकों और समीक्षकों को इन कहानियों और उपन्यासों के कथानक के या पात्रों के असहाय और निरीह पराजय बोध आदि की कहीं कोई शिथिलता दिखाई पड़े किंतु सर्वेश्वर के समग्र साहित्यिक व्यक्तिगत के मूल्यांकन में इनका योगदान नगण्य नहीं है। अपनी कहानियों और उपन्यासों में वे जो कुछ भी पाठक सर्वेश्वर का कथा-साहित्य/ 75

तक प्रेषित करना चाहते थे. वह सब बाद में 'दिनामन' की पत्रकारिता या अपने नाटकों के माध्यम से उन्होंने प्रेषित कर दिया। संभवतः यही कारण है कि आने उन्होंने न तो कहानियाँ लिखीं, न ही कोई अन्य उपन्यास। शायद यही कारण रहा हो कि आगे सर्वेश्वर ने न तो कहानियों ही निखी और न ही कोई अन्य उपन्यास लिखा। वस्तुतः उनके रचनाकार व्यक्तित्व के मूल्यांकन और न ही कहानियों और उपन्यासों की

संवेदना भी शामिल है। इसी संवेदना के मोरूनही सर्वेश्वर यथार्थ को उसकी संपूर्णता में देखने के आकांक्षी बने और इसी प्रयोजन से साहित्य की इन विधाओं में भी लेखन कर सके। भले ही ये दो कहानी संग्रह और वो लघु उपन्यास ही लिख सके, किंतु उनका यह योगदान हिंदी कया- साहित्य में अपना अलग महत्व रखता है। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।

संदर्भ

1. काठ की घटियों से. अज्ञेय, पृ. 5

2. यही, पृ. 7

3. 'कहानी' (पत्रिका) जनवरी 1954, पृ. 3

4. हिंदी गद्य साहित्य डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 165

5. वही, पृ. 165

6. नई कहानियों सं. भैरव प्रसाद गुप्त, पृ. 6

7. आजकल सितम्बर 1980, पृ. 11

8. वही, पृ. 12

9. वही, पृ. 12

10. दिनमान: 9-15 सितम्बर 1979, पृ. 40

11. वहीं, पृ. 40

12. वही, पृ. 40

13. अंधेरे पर अंधेरा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 7

14. यही, पृ. 40

15. वही, पृ. 42

16. दही, पृ. 89

17. वही, पृ. 94

18. काठ की घंटियाँ सं. अज्ञेय, पृ. 3

19. वही, पृ. 19

20. आजकल : सितम्बर 1980, पृ. 12

21. वही, पृ. 12

22. मुक्ति प्रवेशांक: जुलाई, 1984, पृ. 75 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 115

23. पागल कुतों का मसीहा

24. सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 228

अध्याय-4

सर्वेश्वर : समीक्षक के रूप में

यह सत्य है कि सर्वेश्वर ने अलग से किसी समीक्षा-शास्त्र की रचना नहीं की और न ही उन्होंने स्वतंत्र रूप से आलोचना की कोई पुस्तक ही लिखी। किंतु उनके वक्तव्यों, कला तथा संस्कृति विषयक टिप्पणियों, समीक्षाओं और लेखों में उनका मर्मज्ञ आलोचक रूप देखने को मिलता है।' उनके सभी लेख और टिप्पणियों जो अज्ञेय द्वारा संपादित 'दिनमान' के साहित्य, कला और संस्कृति शीर्षक वाले स्तंभों में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में सफल रहे हैं वे पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करने में पूर्ण सफल रही हैं।

रचनाकार और आलोचक का अंतःसंबंध

वस्तुतः सर्वेश्वर यह मानते हैं कि रचनाकार का रिश्ता आलोचक और आलोचना के साथ बड़ा जटिल और उलझाव भरा होता है। उस जटिलता को रेखांकित करते हुए वे समीक्षा का संबंध स्वीकार करते हैं और साथ ही उसकी सीमाओं का निर्देश भी करते हैं। समर्थ लेख को समीक्षक या आलोचक की आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि स्वयं सर्वेश्वर के शब्दों में 'समीक्षक किसी समर्थ लेखन का न हित कर सकता है न अहित। वह हमेशा रचना के पीछे चलने के लिए अभिशप्त है। अपनी समझ व संवेदन से वह केवल इतनी कोशिश कर सकता है कि रचनाकार के साथ चल सके।' अपनी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं कि "ऐसे समीक्षक आज हमारे साहित्य के पास नहीं हैं। यदि हैं, तो ऐसे समीक्षक जरूर हैं, जो अनेक कारणों से, जिनमें साहित्यिक और राजनीतिक मताग्रह भी शामिल हैं, रचनाकार के आगे-आगे शहनाई बजाते हुए चलने की आकांक्षा रखते हैं। मैं मानता हूँ कि किसी भी नए लेखक को समीक्षकों का मुँह नहीं देखना चाहिए और सीधे पाठक से जुड़ सकने की आकांक्षा ही उसकी ताकत होनी चाहिए।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि सर्वेश्वर के उपरोक्त दोनों वक्तव्यों में माग ध्यान जिन दो बातों पर विशेष रूप से जाएगा ये हैं एक समीक्षक किसी समर्थ लेख कान हित कर सकता है न अहित और दसरी, अपनी समझ और संवेदना सेवा केवल इतनी कोशिश कर सकता है कि रचनाकार के साथ-साथ चले। इन दो यात में ही सर्वेश्वर आलोचक और आलोचक से रचनाकार के संबंध को एक तरह ज स्वीकार करते हैं, वहीं दूसरी तरफ अस्वीकार की मुद्रा भी प्रदर्शित करते हैं। यह संमः है कि यह जटिल संबंध उनका किसी आलोचक और किसी की आलोचना में सकता है, किंतु मात्र इतने से ही किसी भी लेखक का आलोचक और आलोचना है संबंध समाप्त नहीं हो जाता। यह संबंध अन्य कई रूपों में अवश्य प्रकट होता है।

आलोचक रचना और उसके पाठकों के बीच सेतु के रूप में स्थित एक ऐसा प्राणी है। जिसकी आवश्यकता बराबर अनुभव की गई है, किंतु सर्वेश्वर को या सेतु टूटा हुआ दिखाई देता है, जो पाठक को रचना से आलोचना द्वारा जोड़ता है। सर्वेश्वर इस संबंध की निस्सारता एवं व्यर्थता को इन शब्दों के माध्यम से व्यस करते हैं- "जितना रचनाकार के लिए जरूरी है कि समीक्षक से बचे, उतना ही पाठह के लिए भी कि वह रचना को अपनी संवेदना की कसौटी पर परखें, न कि इन तथाकथित समीक्षकों की कसौटी पर। वह पुल टूटा हुआ है, जो पाठक और रचनाकार की समीक्षक के माध्यम से मिलता है।""

इतना ही नहीं, सर्वेश्वर एक सामान्य पाठक के लिए उन तथाकथित आलोचकों की मान्यताओं को निष्प्रयोज्य बताते हुए यह भी कहते हैं कि- "यदि आज दुराग्ररी मतवादी समीक्षक न होते तो साहित्य को समझने की ताजगी और शक्ति पाठक में और होती। परेशानी यही है कि आज का पाठक समीक्षा पहले पढ़ता है, रचना बाद में और बजाय सीधे रचना के प्रतिक्रिया होने के वह बमार्फत समीक्षक रचना तक पहुँचता है, तो उलझता है, गुमराह होता है और कभी-कभी कुठित होता है।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि "सर्वेश्वर रचनाकार और पाठक में ही सीधे साहित्य को समझने की ताजगी और शक्ति देखने की आकांक्षा में यह भूल जाते हैं कि ये सारी क्रियाएँ आलोचना के सामान्य गुण-धर्म हैं जिनके द्वारा आलोचक किसी रचना से जुड़ता है। इन संबंधों को और गहराई से स्पष्ट करने के लिए हमें रचना के और आलोचना के अंतसंबंधों पर भी विचार करना चाहिए। कोई भी समीक्षक अपने आदर्श रूप में सामान्य पाठकों से भिन्न एक सच्चा भावुक, सहृदय और प्रतिभावान पाठक है। निश्चय ही वह रचना के प्रति पूर्ण समर्पित काव्य संस्कार युक्त एक विदग्ध सहदय है। इन संदभों में वह कवि या रचनाकार का समानधर्मी है। वस्तुतः वह औसत पाठक से अलग एक आदर्श पाठक या ग्राहक है। एक आदर्श पाठक ही एक आदर्श

आलोचक हो सकता है।

समीक्षक का दायित्व-बोध

समीक्षक के दायित्व-बोध पर विचार करने से पूर्व समीक्षा की अवधारणा एवं उसकी उपयोगिता पर विचार करना अधिक प्रासंगिक होगा। डॉ. देवीशंकर अवस्थी ने अपनी पुस्तक 'रचना और आलोचना' में समीक्षा की उपयोगिता पर विचार करते हुए लिखा है कि "समीक्षा कृति एवं कृतिकार के लिए उपयोगी है, सामान्य पाठक के लिए उपयोगी है एवं ज्ञान की एक विशिष्ट शाखा के रूप में अपने आप में भी उपयोगी है। उसकी इस रूप में अपनी स्वतंत्र सत्ता भी है।

डॉ. अवस्थी मूलतः इन तीन रूपों में समीक्षा की महत्ता स्वीकार करते हुए भी वे समीक्षा की आधारभूत या उपजीव्य सामग्री रचना विशेष को ही मानते हैं। वे कहते है- "समीक्षा, रचना की जटिल संकुलता एवं अर्थ स्तरों को स्पष्ट करके पाठकों को रचना का जो जीवंत बोध देकर, ज्ञान के एक आयाम का विस्तार करती है, यही उसकी चरम सार्थकता है। इस सार्थकता के मूल में रचना और आलोचना की गहरी संपृक्ति स्पष्ट है। चाहे सिद्धांतों का निर्माण हो, चाहे इन स्थापित मानदंडों के व्यवहार का प्रश्न हो, रचनाओं का अद्यावधि और नजदीकी ज्ञान आवश्यक होता है। रचना के सभी पक्षों एवं अवसरों पर इस संपृक्ति की विद्यमानता काम्य है।""

यहाँ यह स्पष्ट है कि रचना की सृजन-प्रक्रिया के अनेक मुखी होने के कारण रचनाकार या लेखक एक ही साथ काल के एक ही मुहूर्त में रचना की प्रेरणा एवं भावसूत्र को ग्रहण करता, विचार के अंकुश से काटता-छाँटता, कल्पना के माध्यम से आवश्यक बिम्ब-विधान की आयोजना करता तथा भाषा के स्थापित स्तर रूप के निकट अपनी अभिव्यक्ति को लाकर पूरी रचना को संप्रेषणीय बनाने का प्रयास करता है। समीक्षक को भी रचना की समीक्षा के समय इस अनेकमुखता के साथ विविध स्तरों पर दोनों के मध्य गहन संपृक्ति के लिए द्रुतगति से संचरण करना पड़ता है।

डॉ. अवस्थी दोनों को समानधर्मी स्वीकारते हुए आगे कहते हैं "मनुष्य का स्नायविक संगठन कैसे काम कर रहा है। इसका सघन आत्मसातीकरण कवि पहले करता है एवं अपनी सृजन प्रक्रिया के दौरान इस स्नायविक प्रतिक्रिया के लय या साँचे को पकड़ने का प्रयास करता है अथवा यो कहें कि अनुभूति विशेष या विविध अनुभूतियों के लिए एक साँचा खोजता है और जब एक बार यह साँचा पकड़ में आ जाता है, तब वह उससे बाहर की ओर भी यदा-कदा संचरण करके भीतर की और लौटता है अर्थात् लिखता भीतर से है और उसमें संशोधन और परिष्कार बाहर

से करता है, जबकि समीक्षक बाहर की ओर से प्रभाव ग्रहण करता है एवं भीतर को और से महत्त्व का आकलन करता है। पर यह होता एक ही समय और साथ-साथ है

डॉ. अवस्थी के समीक्षा संबंधी दोनों वक्तव्यों से यह स्पष्ट है कि तात्विक रूप से रवनाकार और समीक्षक का लेखन कर्म भिन्न होने के बावजूद सर्जनात्मक स्तर पर समानधर्मी है। समीक्षक का दायित्व समीक्षा को अवधारणा में ही निहित है। एक श्रेष्ठ समीक्षक जब किसी कृति के मर्म की समीक्षा करता है या रचना में निहित संवेद्य बस्तु-तत्त्व की समुचित व्याख्या प्रस्तुत करता है या रचनाकार के मत को उजागर करते हुए रचना में निहित व्यंग्य को खोलता है और पूर्ण तटस्थ भाव से सही परिप्रेक्ष्य से कृति का मूल्यांकन करता है तो वह निश्चय ही इन दायित्यों से पूर्णतः परिचित होता है।

एक श्रेष्ठ आलोचक के गुण-धमों की स्पष्ट व्याख्या करते हुए डॉ. रामचंद्र तिवारी कहते हैं-"अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए वह-

1. काव्य को परिभाषित करता है।

2. पम्परागत मूल्यों का पुनरख्यान करता है।

3. नए मूल्यों की स्थापना एवं नवीन पद्धति की प्रतिष्ठा करता है।

4. काव्यानुभूति एवं जीवनानुभूति के संबंधों की व्याख्या करता है।

5. काव्य के आस्वादन का स्वरूप निर्धारित करता है।

6. अवांछित पद्धतियों एवं मूल्यों का विरोध करता है।

7. रचना-प्रक्रिया और प्रेषणीयता की व्याख्या करता है।

8. कालजयी कृतियों और अपनी प्रिय रचनाओं का मूल्यांकन करता है। ये सारे कार्य एक-दूसरे से संश्लिष्ट रूप में संबद्ध हैं।"

वस्तुतः रचनाकार का समानधर्मी होने के कारण आलोचक का दायित्व रचनाकार के दायित्व से विशेष भिन्न नहीं है। डॉ. रामचंद्र तिवारी के अनुसार- "यदि कविता एक सजग संवेदनशील प्राणी की अपने परिवेश के प्रति शाब्दिक प्रतिक्रिया है तो आलोचना इस प्रतिक्रिया के सहारे रचनाकार के दायित्व का विश्लेषण । यदि कवि का या रचनाकार का यह दायित्व है कि वह अपने परिवेश के प्रति सजग हो, जीवन के यथार्थ को पहचानने, अपनी कला-चेतना की व्यापक मानवीय समस्याओं के संदर्भ में निरंतर विस्तृत करता रहे और समाज की प्रगतिशील शक्तियों को पहचान कर उन्हें अपना नैतिक समर्थन दे, तो आलोचक का दायित्व है कि वह सच्चे, संवेदनशील और मानव-समस्या को अपनी कला का धर्म बनाने वाले कवि की वाणी को पहचानने और उसे अपना नैतिक समर्थन दे।"

समीक्षा : स्वरूप और तत्त्व

"समीक्षा और सृजन के अंतर्संबंधों पर विचार करने के उपरांत समीक्षा के स्वरूप और तत्त्व पर विचार करना आवश्यक है। यह सर्वमान्य धारणा है कि जब समीक्षा भी एक तरह की साहित्यिक प्रक्रिया है जो काव्यगत सौंदर्य का उद्घाटन, विश्लेषण और मूल्यांकन प्रस्तुत करती है, तब समीक्षा से संबंधित कुछ मूलभूत तथ्यों को पाहले ही स्वीकार कर लेना अनुचित नहीं होगा।" वे तथ्य हैं-

1. समीक्षा का प्रधान उद्देश्य विशिष्ट कृति का विश्लेषण एवं मूल्यांकन प्रस्तुत करना होता है। अतः समीक्षा की प्रक्रिया कृति के विश्लेषण और मूल्यांकन की ही प्रक्रिया होती है।

2. विशिष्ट कृति के विश्लेषण की प्रक्रिया आरंभ होने से पूर्व स्वयं समीक्षक एक दूसरी तरह की प्रक्रिया से गुजर चुका होता है। इस प्रक्रिया को हम विश्लेषण- पूर्व प्रक्रिया कह सकते हैं। विश्लेषण-पूर्व प्रक्रिया में वे सारी स्थितियों, घटनाएँ एवं व्यापार सम्मिलित होते हैं, जिनका संबंध प्रस्तुत कृति के सूजन से एवं समीक्षक के व्यक्तित्व से जुड़ा होता है।

3. विश्लेषण की आधार भूमि और प्रत्यक्ष विश्लेषण, अंततोगत्या समीक्षा की प्रक्रिया के अभिन्न अंग हो जाते हैं।

4 . विश्लेषण पूर्व-प्रक्रिया के अंतर्गत समीक्षक की ये सभी अनुभूतियों शामिल की जा सकती हैं, जो प्रत्यक्ष प्रक्रिया के लिए अनिवार्य शर्त होती हैं।"

वस्तुतः "समीक्षा के सर्वमान्य एवं शाश्वत रूप के संबंध में विद्वानों में परस्पर मतभेद है। समीक्षा को अनेक रूपों में परिभाषित करते हुए कभी उसे काव्य में निहित उन विशेषताओं को व्यक्त करने की प्रक्रिया कहा गया है जो एक प्रबुद्ध एवं संवेदनशील पाठक के चित्त को आह्ह्लादकारी करती है, तो कभी उसे एक ऐसे पक्षपात रहित तटस्थ प्रयत्न के रूप में देखा गया है, जिसके द्वारा विश्व में जो सर्वोत्तम सोचा-समझा या जाना गया है, उसे परख कर इस रूप में प्रस्तुत किया जाए, कि भावी रचनात्मक प्रतिभा को नई प्रेरणा प्राप्त हो। कभी उसे भाषिक संरचना के रूप में मूर्त काव्यानुभूति को विश्लेषित करने वाले वक्तव्य या भावबोध को विकसित करने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा गया, तो कभी मूल्यों का निर्णय करने वाली शक्ति के रूप में पहचाना गया। समय-समय पर बदलने वाले समीक्षा-प्रतिमानों से जो जटिलता पैदा होती है, संभवतः उत्ती के कारण सर्वेश्वर को रचनाकार और समीक्षक का संबंध जटिल लगा ।" किंतु यदि ध्यानपूर्वक विचार करें तो यह स्वीकारना पड़ेगा कि "आलोचना-साहित्य जिन काव्य कृतियों के मूल्यांकन के प्रयास रूप में लिखा जाता है वे स्वयं संश्लिष्ट, जटिल एवं गतशील जीवन-चेतना से संबंद्ध होने के कारण

बहुआयामी होती हैं। काव्य का केंद्र बिन्दु मनुष्य है। मनुष्य को समझना और उसे बह संपूर्ण जटिलता में चित्रित करना अत्यंत कठिन कार्य है।" काव्य-कृतियों के इस कठिन एवं रहस्यमय सौंदर्य की व्याख्या प्रस्तुत करने के प्रयत्न में आलोचना का बहुआयामी होना सहज सम्भाव्य है।

सर्वेश्वर का समीक्षक व्यक्तित्व

यह सत्य है कि सर्वेश्वर ने न तो आलोचना की कोई पुस्तक लिखी और न ही सृजन और समीक्षा के अंतर्संबंधों को लेकर समीक्षा का कोई प्रतिमान ही निर्मित किया है। 'दिनमान' पत्रिका में उपसंपादक के रूप में कार्य करते हुए सर्वेश्वर ने कला, साहित्य, संस्कृति, नृत्य और रंगमंच जैसे नियमित स्तंभों में जो लेखन कार्य किया, वह यह सिद्ध करता है कि वे एक समर्थ आलोचक और समीक्षक के व्यक्तित्व से युक्त हैं। अपने इन स्तंभों में सर्वेश्वर ने जो लेख समीक्षाएँ और टिप्पणियाँ लिखी हैं, उन्हें निम्नांकित क्रम में रखा जा सकता है-

1. साहित्यिक कृतियों की समीक्षा।
2. नृत्य और विभिन्न कलाकृतियों पर टिप्पणियाँ ।
3. रंगमंचीय प्रस्तुतियों की रिपोर्ट।
4. संस्कृतिधर्मी लेख ।
5. पुस्तकीय वक्तव्य ।

'दिनमान' के 'साहित्य' शीर्षक स्तम्भ में सर्वेश्वर ने अनेक साहित्यिक कृतियों की समीक्षाएँ कीं। इनमें गद्य और पद्य दोनों विधाओं की साहित्यिक कृतियाँ सम्मिलित है, जिनमें उपन्यास, कहानी-संग्रह, आलोचना और काव्य-संग्रहों की समीक्षाएँ की गई हैं। इन्हीं में उनके समीक्षक व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। सर्वेश्वर साहित्यकारों से यह अपेक्षा करते हैं कि वह अपनी रचना की विषयवस्तु को पूरी कलात्मकता के साथ व्यक्त करते हुए साहित्य की गहराई को जानें और समझें। इस गहराई के बिना किसी भी लेखक का दृष्टिकोण अत्यंत सतही हो सकता है।" स्वयं सर्वेश्वर स्वीकार करते हैं कि "साहित्य में गहराई का अर्थ है बुनियाद में जाना। वर्गीय चरित्रों और स्वभावों को व्यक्त कर देने मात्र से किसी अच्छे साहित्यकार का दायित्व पूरा नहीं हो जाता, बल्कि उसका अपना एक रचनात्मक तर्क होना चाहिए।""

मणि मधुकर के उपन्यास 'पत्तों की बिरादरी' की समीक्षा में वे अपने इस रचनात्मक तर्क को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "एक चालू बंबइया फिल्म का सारा मसाला इसमें मौजूद है-काम है, हिंसा है, शराब है, नाच-गाना है। डाकू से लड़ाई है, नर-यति है, अंधड़ है, रेगिस्तान है। अनाज की तस्करी है, क्षेत्रीयता

का यात्रों और परिवेश में चटक रंग है। थोड़ी प्रेम करुणा आदि भी है और अंत में जशी खासी गोलियों का चलना और असद पात्रों का एक-दूसरे को मार डालना भी और भारत-पाकिस्तान के विभाजन का एक बड़ा मसला भी। हो सकता है, जिस जीवन का लेखक ने चित्रण किया है वह इतना फिल्मी हो, लेकिन यदि वह चित्रण या होता तो शायद यह छाप मन पर नहीं पड़ती।

व्यापकता और गहराई' नामक अपने एक लेख में डॉ. नामवर सिंह ने भी साहित्य में गहराई की आवश्यकता को कुछ इस शब्दावली में स्वीकार किया है- साहित्यकार की गहराई इस बात में है कि वह सतह को तोड़ता है और इस तरह वह भ्रमों को हटाकर वास्तविकता का सही रूप उद्घाटित करता है। उद्घाटन कार्य ही साहित्यकार का रचना-कार्य है। वास्तविकता का निर्माण वह उद्द्घाटन कार्य से ही करता है, भौतिक कारीगरों की तरह वह सचमुच कोई चीज नहीं बनाता।

डॉ. नामवर सिंह अनुभव के स्तर पर इस गहराई को स्पष्ट करते हुए कहते कि "जब किसी अनुभूति को हम गहरी करते हैं तो उसे मानवीय कहते हैं।" मानवीयता की व्यापक भूमि पर ही कोई अनुभूति गहरी हो सकती है।""

देवी शंकर अवस्थी की आलोचनात्मक कृति 'रचना और आलोचना' की जो समीक्षा सर्वेश्वर ने की है उससे यह जाना जा सकता है कि उनकी आलोचना में क्या अपेक्षा है? अवस्थी जी के समीक्षक व्यक्तित्व की प्रशंसा में उनके जिन गुणों का उल्लेख वे करते हैं, उसे अन्य समीक्षकों के लिए भी अनिवार्य मानते हैं: "अवस्थी जी की आलोचना-शैली पंडिताऊ नहीं है, न ही उलझाऊ है। वह साफ ढंग से उलझी बात भी कह लेने का शिल्प जानते हैं। साफ बात को भी उलझाकर कहने को आज के आलोचकों की रीति से अलग पड़ते हैं।""

सर्वेश्वर, अर्चना वर्मा के कविता संग्रह 'कुछ दूर तक' की समीक्षा में उनकी काव्यानुभूति के विविध स्वरों और उसकी अंतर्वस्तु का विश्लेषण करते हैं। रचना की अंतर्वस्तु के विश्लेषण करने के साथ ही वे उसके काव्य-सौंदर्य में निहित विचार, अनुभूति और काव्यभाषा का समुचित मूल्यांकन करते हैं। इस उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी : "(अर्चना वर्मा की) ये कविताएँ भय से मुक्त हैं। हमें भी भय से मुक्त बरती हैं और समझ के पैरों पर खड़ा करती हैं। सघनतम अनुभूति अंततः विचार पर ही जाकर टिकती है, उससे साहस के साथ टकराने का जिंदा रहने का है।" अर्चना ने कहीं भी जिंदगी को उसकी परिधि और परिवेश को छोटा करके नहीं देखा है। कविता का काम ही छोटी-से-छोटी दुनिया को बड़ा कर देना है। कविता में कुछ भी काट कर अलग से नहीं देखा जा सकता-न विचार, न अनुभूति, न भाषा, न बनावट।

वह एक संपूर्ण इकाई होती है। एक ही समय जब सब कुछ अपने चरमोत्कर्ष

पर होता है तभी एक अच्छी कविता ढलकर निकलती है।"

देवेंद्र कुमार के काव्य संग्रह 'बहस जरूरी हैं' की समीक्षा में उनके समीक्षक रूप में कवि मन की सहृदयता, उसका चिंतन और सजग विचारात्मक क्षमता उजागर होती है। इसकी समीक्षा में वे लिखते हैं कि- "आज के कवि को गद्य जरूर निखना सोती है। इसानक गय ही नहीं, विचार-वाहक गद्य भी। इसका कारण है कि जो कवि गद्य नहीं लिखता, वह जीवन, जगत् और समाज की अपनी हर चिंता को कविता मैं ही कहने के लिए बंधा रहता है। चिंताएँ सच्ची और सही हो सकती हैं, पर जसरी नहीं कि ये कविता में ढलकर आएँ तो सच्ची और सही कविताएँ भी बन जाएं। "कम-से-कम उन्हें अपनी संवेदना और अपनी भाषा की प्रकृति के अनुसार यह समझना चाहिए कि उन्हें क्या करना है और स्वयं अपनी कविताओं का क्रूर संपादन भी। अपनी रचना को जो जितना अच्छा संपादक होता है, उतना ही अच्छा कवि भी।"

कला संबंधी दृष्टि

नृत्य-नाटक, नृत्य और चित्रकला के परिप्रेक्ष्य में विषयवस्तु या कथ्य को अत्यंत रोचक शैली में कलात्मक और सटीक ढंग से पाठक तक पहुँचाने के उपादान कला के अंतर्गत आते हैं। सर्वेश्वर समाज में लोगों के मानसिक और बौद्धिक स्तरों के अनुसार कलात्मक स्तरों की बात करते हुए कहते हैं- "साहित्य और कलाओं के माध्यम से मैं साधारण आदमी से एक संवाद स्थापित करना चाहता हूँ। मुझे इसके लिए आवश्यक लगता है कि रचना को अनेक स्तरों तक फैलाना पड़ेगा। पंडितों और काव्य-मर्मज्ञों के साथ-साथ उनके लिए भी, जो अक्षर पहचानते हैं और उनके लिए भी जो निरक्षर हैं। मेरी कविताओं, नाटकों, कहानियों तथा कलात्मक विधाओं और रंगमंचीय प्रस्तुतियों पर लिखी समीक्षाओं को इसी संदर्भ से जोड़ कर देखना चाहिए।"

उन्होंने कला के नाम पर चल रही बाजीगरी, अनावश्यक चमत्कार प्रदर्शन, अस्पष्टता, दुरुहता आदि को एक सिरे से नकारा है। यह अवश्य है कि सूक्ष्म कलात्मक-संवेदना का उन्होंने निषेध नहीं किया है। उन्हीं के शब्दों में, "सादगी और सहजता बड़े कलाकार की पहचान हमेशा से रही है और रहेगी। सूक्ष्म की पकड़ से या अमूर्तता से भी इसका कोई वैर नहीं है। गायन, चित्रकला या लेखन सभी जगह यही सत्य है और रहेगा। नए कलाकारों को सूक्ष्म की पकड़ और अमूर्तता को अपनी कमजोरी के लिए ढाल नहीं, अपनी उपलब्धि को हथियार बनाना होगा और यह मानकर चलना होगा कि अमूर्त की साधना यथार्थ से भागना नहीं, आत्मलय होना ही है।""

"सादगी और सहजता के इन्हीं कलात्मक प्रतिमानों को सामने रखकर सर्वेश्वर ने राजधानी दिल्ली में होने वाली रंगमंचीय प्रस्तुतियों, कला-प्रदर्शनियों और नृत्यों की

गहरी समीक्षाएँ 'दिनमान' के कला और नृत्य शीर्षक स्तंभों में लिखी हैं। वर्ष 1980 के सितम्बर माह में कल्याणी कला केंद्र के संयोजन में रंगश्री लिटिल बने टप ने दिल्ली में न नृष्य नाट्य 8 दिन प्रस्तुत कर अपनी अदितीय कला का प्रदर्शन किया था। इन -नाटकों की प्रस्तुति, पात्रों के अभिनय, संवाद और संगीत पक्ष के आस्वादनीपरान्त अपनी समीक्षा में सर्वेश्वर लिखते हैं कि पशुतंत्र मृत्य-नाट्य एक साथ समसामयिक और शाश्वत दोनों ही है और बिना किसी राजनैतिक वैचारिक बिलले के सता की उस बुनियाद को उभारता है, जिसकी अंतिम परिणति ही दो वगों में विभाजित होना है।

एक शोषक और दूसरा शोषित और निदान शोषितों का एक होकर लड़ना ही है। अपने कथ्य और निरूपण में 'पतंत्र' रंगश्री के कर्म को सामाजिक सरोकार को दिशा में आगे से जाता है। जानवरों के मुखौटे लगाए उनकी गतियों को मापते कलाकार संगीत की लय पर कथा में निहित घटनाओं और चरित्रों के भावों को चढ़ाव-उतार के साथ जिस लोक में ले जाते हैं, वह यथार्थ की भूमि पर उस संकल्प को जगाने की साधना है, जिसे मानव-नियति से जोड़कर ही देखा जा सकता है। चौक-धुनों और लोक-रंगों की नृत्य-नाटकों में उपस्थिति को सर्वेश्वर ने प्रमुखता ने ग्खांकित किया है। 'रामायण' नामक नृत्य-नाट्य जो कि इसी मंडली द्वारा प्रस्तुत हुआ था, उसकी समीक्षा में वे लिखते हैं कि-

"जिसने इसे नहीं देखा, उसने भारतीय नृत्य-नाट्य मंच का एक ऐसा हिस्सा खो दिया, जिसके बिना उसकी उपलब्धि की पूरी कल्पना नहीं की जा सकती। अपनी संक्षिप्तता, लोकरंग, कठपुतलियों की गति में तैरते पात्र, सुंदर मुखौटे, विश्वसनीय परिधान, अद्वितीय संगीत, उत्तर से दक्षिण तक की तमाम लोक धुनों का गुंफन सभी आज भी ताजा है और हमेशा रहेगा।"

इस प्रकार की विभिन्न कलात्मक प्रस्तुतियों पर सर्वेश्वर ने जो समीक्षाएँ लिखी है उनमें उनके कलात्मक दृष्टिकोण, उनकी आस्वादन पद्धति और गहरी छानबीन के साथ-साथ निश्चित सोद्देश्यता परिलक्षित होती है। ये बातें यह प्रमाणित करती हैं कि उन्हें भिन्न-भिन्न कलाओं से कितना लगाय था और भावों-विचारों को सहजता और सादगी से सामान्य दर्शकों तक पहुँचाने के लिए वे माध्यम उनकी दृष्टि में कितने उपयोगी थे।"

संस्कृति संबंधी दृष्टि

"सर्वेश्वर ने गांधीवाद का इस्तेमाल', 'सांस्कृतिक दबाव और रचनाधर्मिता' 'मेरा बचपन और जोश', 'कर्फ्यू और झल्ती वाता' जैसे जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों से जुड़े लेखों में परंपरागत विचारों और चिंतन को समकालीन व्यापक आयामों में देखा

है। इन लेखों की विचार पद्धति संस्कृति के बहुआयामी दोहन पर चिता विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दबावों में सामान्य मनुष्यों की करुणा स्थिति हृदय को गहरे प्रभाक्ति करती है। सांस्कृतिक दबाव और रचना धर्मिता' शीर्षक लेख में सस्कृति को पे एक मंच के रूप में देखते हैं, जहाँ एक के स्वर में सबके स्वर और एक की गति में सबकी गति दिखाई पड़ती है।

सर्वेश्वर के ही शब्दों में, "संस्कृति हमें एक मंव देती है-एक के सुर में मदके सूर, एक की गति में सब की गति मिलाना सिखाती है। इसलिए सत्ता इससे हमेशा डरती है। जो सत्ता जितनी ही ज्यादा कमजोर और दूसरों को कुचल कर अपने बने रहने का ख्वाब देखती है, यह उतनी ही ज्यादा सांस्कृतिक व्यक्ति की यह स्वाधीन आवाज छीनने-दबाने, और घोटने की कोशिश करती है। संस्कृति पर पड़ने वाले दबाव से ही सत्ता का चरित्र निरूपित होता है, होता रहा है।

'गांधीवाद का इस्तेमाल' शीर्षक लेख में सर्वेश्वर का चिन्तित विचारक अतमंन समकालीन संदर्मो में ही शासन-व्यवस्था के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दुष्वक को कुछ इस स्वरूप में व्यक्त करता है- "गांधी नहीं रहे, पर गांधीवाद घसीटा जा रहा है-सैकड़ों संस्थाएँ उनके नाम पर चल रही हैं। सरकार उनके नाम पर चल रही है तथा सत्ता की नई पीच उन्हीं के नाम पर पनपती है। विचारक, दार्शनिक उनहे नाम पर बड़ी-बड़ी व्याख्याएँ करते हैं, उनके सिद्धांतों और आदशों की दीप्ति से चकावीच फैलाते हैं, संसार को चकित करते हैं और बताते हैं कि गांधी की राह संसार में सुख की राह है, मानव कल्याण की राह है, विश्वशांति की राह है "गांधीवाद इस देश में कर्म से नहीं जुड़ा, कुकर्म में जरूर परिणत हुआ।"*

सर्वेश्वर का रचनात्मक दृष्टिकोण सामाजिक विसंगतियों और बिडम्बनाओं से भरे परिवेश में अत्यंत स्पष्ट है। उनके चिंतन और विचारधारा का विश्लेषण करें तो उसमें आधुनिक जीवन की तमाम सामाजिक और राजनैतिक विसंगतियों और विद्रपताओं को स्थान मिला है। मानव जीवन में व्याप्त विविध स्तरीय विद्यताओं को उजागर करने में उनका आलोचक रूप सफल रहा है। उनकी संस्कृति-संबंधी टिप्पणियों में उनके विचारों का प्रवाह, मौलिक चिंतन और सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं के प्रति सशंकित मन की त्रासदी एवं पीड़ा बारम्बार प्रकट होती है। भ्रष्ट शासन व्यवस्वा के दोहरे चरित्र को उजागर करने के लिए सर्वेश्वर ने उस भाषा का प्रयोग किया है, जिसमें व्यंग्य की चुभन अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ विद्यमान है।

सर्वेश्वर की प्रतिभा पूर्णतः मौलिक और प्रायः विविधात्मक रही है। "उनके समीक्षक व्यक्तित्व में जहाँ वे काव्य को परिभाषित करते हैं, या पारंपरिक मूल्यों का पुनराख्यान करते हुए कृति के काव्य-सौंदर्य संबंधी सभी पक्षों-भाषा, भाव, बिम्ब की

स्थापना एवं प्रतिष्ठा करते हुए काव्यानुभूति और जीवनानुभूत्ति के संबंधों की व्याख्या कसे करते हैं, उनके कवि-समीक्षा व्यक्तित्व की इन विशेषताओं मेंमयाख्या ना-प्रक्रिया और प्रेषणीयता की व्याख्या के साथ-साथ उनकी अपनी प्रिय रचनाओं का मुल्यांकर भी सम्मिलित है। यद्यपि उन्होंने समीक्षा की कोई स्वतंत्र पुस्तक नहीं गी और नहीं उन्होंने कृतियों के आस्वादन के कोई निश्चित और शाश्वत प्रतिमान से बनाए, फिर भी कृति के बहुआयामी विस्तार को उन्होंने जिस ढंग से देखकर आजपनी समीक्षाएँ लिखी हैं, उनमें उनका सहृदय कवि मन पूरी मर्मज्ञता के साथ कृति के सभी पक्षों का उल्लेख करते हुए एक समर्थ और मर्मज्ञ आलोचक के रूप में हमारे हमक्ष उपस्थित होता है। चाहे किसी उपन्यास की समीक्षा हो या कहानी-संग्रह की, कविता-संग्रह की समीक्षा हो या फिर नृत्य-कला और रंगमंचीय प्रस्तुतियों की-सबमें सर्वेश्वर की भेदक दृष्टि अपनी रचनात्मक तृप्ति हेतु कुछ न कुछ अवश्य पा लेती वे रंगमंचीय कलात्मक प्रस्तुतियों और नृत्यों आदि की जैसी समीक्षा लिखते हैं, उनसे विभिन्न कलाओं के प्रति उनका गहरा लगाव प्रकट होता है। ऐसा लगता है कि सर्वेश्वर का कलाओं का सहृदय पारखी मन उनके बेचैन कवि-व्यक्तित्व की एक सहज जरूरत ही है, जो कविता से या दूसरे भापाई माध्यमों से पूरा नहीं हो पाता, इसलिए उन्हें दूसरी कलाओं से साक्षात्कार के लिए प्रेरित करता है।"

इस संदर्भ में डॉ. नेमिचंद्र जैन के शब्दों हैं "सर्वेश्वर उन इने-गिने साहित्यकारों में से थे, जिन्हें विभिन्न कलाओं से सिर्फ लगाव ही नहीं हुआ, उनके भीतरी रिश्ते, उनकी आपसी निर्भरता का भी गहरा अहसास होता गया। इस लगाव और अहसास की छाप उनके व्यक्तित्व और साहित्य दोनों पर दिखाई पड़ती है। यही चीजें उनकी रचना-यात्रा में एक नए और उत्तेजक मोड़ की संभावनाओं को भी रेखांकित करती है। यह इसलिए और भी कि उनकी इस कला रसिकता में कोई दिखावा या अहंकार नहीं था, बल्कि शायद इसने उन्हें अधिक सौम्य, ग्रहणशील और उदार बनाया था, जिसके कारण वह हर नए ईमानदार विचार, अभिव्यक्ति और कोशिश का सहज उत्साह के साथ स्वागत कर पाते थे, भले ही वह उससे सहमत न हो।"

वस्तुतः सर्वेश्वर समीक्षक रूप में साहित्य के रसास्वादन की गहरी अंतर्दृष्टि रखते थे। उन्हें कला, संस्कृति, भाषा, भाव, विचार, जीवन के प्रति नवीन दृष्टिकोण विकसित करने की गहरी ललक थी। साहित्य के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं समर्पण के भाव से चे युक्त थे। उनके समीक्षक व्यक्तित्व में सहदयता, संबंधित विषय-ज्ञान, निष्पक्षता, निर्भयता आदि का उचित समावेश था। यही कारण है कि वे हर कला को जीवन के सापेक्ष मानते हैं। संगीत, नृत्य और चित्रकला जैसी ललित कलाओं के विषय में भी उनके गुण-धमों का मूल्यांकन करने में भी जीवन के प्रति निरपेक्ष

भाव को उन्होंने अंगीकार नहीं किया।

संदर्भ

1. सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 320
2. बहरे, पृ. 230
3. आजकल सितम्बर 1950, पृ. 15
4. वही, पृ. 15
5. सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 231
6. आजकल सितम्बर 1980, पृ. 15
7. वही, पृ. 15
8. रखना और आलोचना देवी शंकर अवस्थी, पृ. 10
9. वहीं, पृ. 10
10. वही, पृ. 10
11. वही, पृ. 10
12. आलोयक का दायित्व डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. ३
13. बही, पृ. 4
14. वही, पृ. 5.
15. वही, पृ. 6
16. वही, पृ. 6
17. आलोचक, आलोचना प्रक्रिया और स्वरूप सं. आनंद प्रकाश दीक्षित, पृ. 13
18. सर्वेश्वर व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 238
19. आलोचक का दायित्व डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 12
20. सर्वेश्वर व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 235
21. इतिहास और आलोचना डॉ. नामवर सिंह, पृ. 17
22. वही, पृ. 14
23. रचना और आलोचक देवी शंकर अवस्थी, पृ. 12
24. दिनमान: 8-14 जून 1980, पृ. 42
25. दिनमान: 9-16 जुलाई 1981, पृ. 41
26. दिनमान 26 जुलाई-1 अगस्त 1981, पृ. 46
27. बही, पृ. 46
28. दिनमान: 9-15 सितम्बर 1997, पृ. 40
29. वही, पृ. 40
30. सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 244
31. दिनमान 28 सितम्बर-4 अक्टूबर 1980, पृ. 44
32. वही, पृ. 44
33. सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्य डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 245
34. वही, पृ. 245
35. मुक्ति प्रवेशांक जुलाई 1984, पृ. 131

36. वही, पृ. 130

अध्याय-5

सर्वेश्वर : रचनात्मकता के अन्य आयाम

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की प्रसिद्धि हिंदी-साहित्य में यद्यपि एक कवि, कथाकार और पत्रकार के रूप में ही रही है। परंतु उनके संस्मरणात्मक लेखों, अनुवादों और संपादक रूप पर गंभीरतापूर्वक दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि उनके माहित्यिक व्यक्तित्व के ये रूप भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

"उनके संस्मरणों में जो एक नितांत निजता, आत्मीयता और बहुत सारी अंतरंग स्मृतियों के प्रति हार्दिक अनुराग व ममता दिखाई पड़ती है। वह उनके एक समृद्धशाली रचनाकार होने का परिचायक है। जून 1972 में जब सर्वेश्वर सोवियत लेखक संघ के निमंत्रण पर यहाँ के युगांतरकारी प्रतिष्ठित कवि पुश्किन के काव्य समारोह में भाग लेने के लिए सोवियत संघ की यात्रा पर गए हुए थे, तो अपनी उसी यात्रा को आधार बनाकर उन्होंने एक यात्रा-संस्मरण लिखा, जो लिपि प्रकाशन दिल्ली से जुलाई 1976 में 'कुछ रंग कुछ गंध' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने वहाँ के अपने दैनिक क्रिया-कलापों के साथ-साथ सोवियत जन-जीवन का विवरण इस ढंग से प्रस्तुत किया कि सोवियत समाज अपनी सांस्कृतिक गरिमा, निष्ठा और ईमानदार व्यक्तित्व के साथ जीवंत और मूर्त हो उठा। 27 मई, 1972 से 13 जून, 1972 तक उन्होंने सोवियत संघ के निमंत्रण पर वहाँ के विभिन्न प्रदेशों, प्रसिद्ध स्थलों का भ्रमण करते हुए विभिन्न सांस्कृतिक समारोहों में सक्रिय रूप से भाग भी लिया तथा वहाँ के जन-जीवन के विभिन्न आयामों की जो प्रतिच्छवि उनके मानस-पटल पर अंकित हुई, उसे वहाँ की सभ्यता और सांस्कृतिक परिवेश के साथ जोड़कर देखने का प्रयत्न किया।"

संस्मरण : अर्थ और विशेषता

'संस्मरण' को पारिभाषित करते हुए हिंदी साहित्यकोश में कहा गया है,

संस्मरण लेखकको स्वयं देखता है, जिसका यह स्वयं अनुभव करता है, उमी वर्णन करता है। उसके वर्णन में उसको अनुभूतियाँ संवेदनाएं भी गहती है परिभाषा से स्पष्ट है कि 'सोमरण' सहृदय के स्मृति-कोप की चाह अमूल्य आनंदवाव निधि है, जिसका अनुभव से प्रत्यक्ष संबंध होता है।

स्वभावतः ही अनुभव जगत के विस्तार के अनुरूप संस्मरण के विषय भी असीम हैं। कोई भी अनुभव शाब्दिक अभिव्यक्ति पाकर रोचक प्रसंग के रूप में संस्मरण का स्वरूप धारण कर सकता है। व्यापक अर्थ में सृष्टि मात्र के किसी अंश अथवा संपूर्ण स्वरूप से संबद्ध अपने अनुभव की प्रस्तुति या अभिव्यक्ति ही संस्मरण है। तात्विक दृष्टि से संस्मरण स्मृति की अभिव्यक्ति है।" डॉ. शिव प्रसाद सिंह के शब्दों में, "जो याद किया जाए, यह स्मृति है-स्मृति कुछ नहीं संस्मरण ही है। डॉ. शिव प्रसाद सिंह की परिभाषा से स्पष्ट है कि स्मरणीयता ही इसको प्रथम शतं है। "स्मरण शब्द से ही संस्मरण बना है। संस्मरण अर्थात् सम्यक् स्मृति अभिशाप बनकर जो रह गई और जिसे अभिव्यक्त किया गया।" सदगुरु शरण अवस्थी के शब्दों में "संस्मरण में प्रतिक्रियात्मक प्रत्युत्तर आवश्यक है। संस्मरण में प्रतिक्रियात्मक आदान-प्रदान हो ।

व्यतीत हुए क्षणों को स्मरण करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है और जीवन में इसकी आवश्यकता भी स्पष्टतः देखी जाती है। जैसे चिन्तन-मनन से शक्ति है, वैसे ही स्मरण भी। रचना-प्रक्रिया के इस रहस्य की स्पष्ट व्याख्या करते हुए नरेश मेहता कहते हैं कि "संस्मरण और अनुभूति दोनों इतने पैरेलल हैं कि साहित्य को स्व-अनुभूति से काटा नहीं जा सकता, जब वह वैयक्तिक होगा, तो संस्मरण हो जाएगा और सार्वकालिक होकर वही मूल्यवान बन जाएगा।""

कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक निबंधादि की भाँति संस्मरण भी एक स्वतंत्र साहित्यिक-विद्या के रूप में स्वीकृत है। इसमें लेखक सृष्टि से जुड़े संदर्भों या उसके किसी अंश को अपनी स्मृति के आधार पर विशिष्ट अनुभवां और आत्मीयता के साथ कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। 'कुछ रंग कुछ गंध' नामक संस्मरण मूलतः एक यात्रा संदर्भ से संपृक्त है और उसमें वहाँ की स्मृतियाँ अभिव्यक्ति हुई हैं।

संस्मरण और यात्रा-वृत्तांत के अंतर्संबंध

'कुछ रंग कुछ गंध' सर्वेश्वर की एक ऐसी रचना है, जिसमें यात्रा विवरण भी है और संस्मरण भी। यात्रावृत्त भी यायावार के अनुभव की अभिव्यक्ति है, जिसमें चराचर क्षेत्र के दिग्दर्शन की अनुभूति भरी होती है। यात्री जो कुछ भ्रमण के क्रम में देखता या भोगता है, उसका वर्णन ही प्रस्तुतिकरण यात्रा-विवरण बन जाता है।

उसके अनुभव क्षेत्र में भौगोलिक विस्तार, प्राकृतिक सौंदर्य, प्रभावित करने वाले पात्र या प्रसंग सब स्वतः सिमटे चले आते हैं और यात्रा वृत्तांत में वह उनका उपात्र करता है। इस प्रकार यात्रा-साहित्य का उपजीव्य वास्तविक और अननकात प्रव ही होता है।

लेखक अपने स्मृति-कोष में यात्रा के विभिन्न प्रसंग संस्मरण रूप में संचित करता चलता है और उसे ही सुव्यवस्थित रूप में सिलसिलेवार प्रस्तुत करता है, जिसमें तथ्यों के संयोजन में परोक्ष रूप से ही सही, यह स्वतः ही केंद्र में बना रहता है। स्वभावतः उसके विवरण में उसकी अपनी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ सम्मिलित रहती मैं उसकी निजी संवेदनाएँ और अनुभूतियाँ भी समाविष्ट हो जाती हैं और अंततः उसकी अभिव्यक्ति में आत्मीयता भी आ जाती है। जिसके चलते वह विवरण संस्मरण बन जाता है।"

'हिंदी-साहित्य-कोश' में यात्रा-साहित्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि "अधिकतर यात्रा-साहित्य संस्मरणात्मक होता है और इसमें यात्री अपने प्रभावों, प्रतिक्रियाओं और संवेदनाओं को महत्त्व देता है।" यात्रा-साहित्य की रचना- प्रक्रिया का संबंध यायावर की भ्रमणशीलता या घुमक्कड़ी वृत्ति से है। घुमक्कड़ी की यह प्रवृत्ति मनुष्य में प्रारंभ से ही है और "सौंदर्य-बोध की दृष्टि से उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करने वाले यायावर एक प्रकार से साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जा सकते हैं और उनकी मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा-साहित्य कहा जाता हैं

"इसलिए सुदूर अतीतकाल में ही यात्रा-साहित्य के आरंभ और अब तक के बहुविध विकास के साथ स्वतंत्र साहित्य के रूप में इसकी परिणति को स्वीकार किया जाता है। सच तो यह है कि संस्मरण, साहित्य के एक अंग के रूप में यात्रा विवरणात्मक संस्मरण या कि संस्मरणात्मक यात्रा-विवरण को भी परिगणित किया जाना संभव है, परंतु समस्त यात्रा-साहित्य संस्मरणात्मक ही हो, यह कोई आवश्यक नहीं।

सद्गुरु शरण अवस्थी के शब्दों में "यात्रा आदि के भीतर संस्मरण हो सकता है, मगर उतना ही, जितना भाग उसके भीतर हो सकता है- स्वतंत्र संस्मरण की विधा की प्रतिष्ठा से यात्रा-विवरण आदि को अलग रखना ही होगा।" विशुद्ध यात्रा-साहित्य को संस्मरण से पृथक् करने वाली उसकी अपनी कुछ शर्तें भी हैं। यात्रा-साहित्य मूलतः वर्णनात्मक होता है, इसी कारण तथ्यमूलक या वस्तुपरक होता है। संस्मरण में जैसी आत्मीयता निहित होती है, यात्रा-साहित्य में वैसी आत्मीयता का प्रायः अभाव होता है। यात्रा करने वाले के चरित्र या व्यक्तित्व का समावेश इसमें बहुधा नहीं होता। साहित्य कोश के अनुसार अपने को केंद्र में रखकर भी प्रमुख न होने

देना, साहित्यिक चापावर का प्रमुख कर्तव्य है, क्योंकि यदि लेखक का व्यक्तिव उमरगा वा अन्य सब गीण हो जाएगा। इतना हो क्यों, 'यात्रा-विवरण में कोई से राभवात प्रमुख होकर नहीं उभरती, उसमें समूचे भौगोलिक परिवेश का विस्तार होता उसमें पेड़ की जगह जंगल जैसी व्यापकता होती है, जिसमें केंद्रीय पात्र या पदार्थ नहीं होता, न सुक्ष्म रेखाओं की अधिक गुंजाइश ही होती है। स्वभावतः यात्रा-साहित्य का लेखक सब कुछ पर एक सपाट सरसरी दृष्टि डालता चलता है।

"सर्वेश्वर कुछ रंग कुछ गय' के आमुख में संभवतः इसीलिए कहते हैं कि रंग मेरे निताल अपने में जा सोवियत धरती के फलक से उभरे हैं। अतः उस अर्थ में ये यात्रा-संस्मरण नहीं हैं, जिस अर्थ में साहित्य और पत्रकारिता के अंतर्गत आए दिन देखे जाते हैं। जब एक की सीमाएं दूसरे की सरहदों को छूती हों और रोशनी पनियों से छन कर आती है तब रंग हवा में उड़ने लगते हैं। उनको पाना अपने में गहरे उत्तर जाना है। भारतीय मन की यह कचोट इसमें है। जाहिर है, उस रंग में नहाया नहीं जा सकता, पर उसके सहारे अपनी संस्कृति को चुना जा सकता है, हवा में डोलते खड़े वृक्ष की तरह।"

कुछ रंग कुछ गंय

अपनी सोवियत यात्रा का परिचय देते हुए सर्वेश्वर कहते हैं, "यात्रा मैंने जरूर की, पर इस क्रम में जो में लिखेंगा, वह ठेठ यात्रा संस्मरण शायद नहीं हो सकेगा, क्योंकि रूस जाते समय सैलानी जैसा भाव मन में नहीं हो सकेगा और वहाँ पहुँचकर भी यह बहुत नहीं जागा। सेलानी जैसा भाव, यानी दौड़-दौड़कर सब कुछ देख डालना, हर पाला छू आना। और यात्रा संस्मरण हर राई रत्ती को मसाला लगा चटपटा बना पेश करना, यह मेरे बूते का नहीं है, न ही मेरा स्वभाव है।" सोवियत के विषय में सर्वेश्वर ने 'कुछ रंग कुछ गंय' में जो लिखा, उसे देखकर यह नहीं प्रतीत होता कि वहाँ जाकर उसके मन में 'सैलानी जैसा' भाव नहीं जागा और कहीं से भी ऐसा भी प्रतीत नहीं होता कि उसे रोचक ढंग से प्रस्तुत करना उनके लिए संभव नहीं। वस्तुतः यह पूरी पुस्तक अपनी संक्षिप्तता के बाद भी सोवियत जन-जीवन के विविध मनोहर

चित्र प्रस्तुत करती है।

सर्वेश्वर ने इसमें सोवियत के लोगों की सांस्कृतिक दृष्टि एवं उत्सव, उनके आचार-विचार, उनकी निष्ठा, देशभक्ति कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी, रागात्मकता, उत्फुल्लता, महदयता और मानवता को पूर्ण सहदयता से प्रस्तुत किया है, तो वहीं दूसरी ओर यहाँ की राष्ट्रीय प्रगति में विविध आयामों; यथा शिक्षा, संस्कृति, कला के वैज्ञानिक विकास के साथ निरंतर अपने राष्ट्रवासियों के सापेक्ष बनाने को भी पूर्ण आत्मीयता

से अभिव्यक्त किया है। इसके साथ ही इसी के समानांतर भारतीय जन-मानस में अनेक विद्रूपताओं और विसंगतियों, अभाव, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, दया जैसे मानवीय मूल्यों का क्षरण, अराजकता तथा अपने राष्ट्र के पूजनीय एवं गणमान्य नेताओं, लेखकों, कलाकारों एवं कवियों के प्रति एक प्रकार की अनास्था का भाव लेखक को सोवियत जन-जीवन को चित्रित करते समय प्रश्नाकुल एवं बेचैन करता है।

सर्वेश्वर लेनिनग्राद की एक सुखद घटना को व्यक्त करते हुए कहते हैं, "दिन में पाल प्रथम का महल देख चुका था। इस विशाल महल में हजारों मूर्तियों हैं। नास्ती बमबारी में महल खंडहर हो गया था। क्षतिग्रस्त महलों के चित्र देखे थे। अब फिर महल वैसा का वैसा खड़ा है। लगता ही नहीं कभी कुछ हुआ था। पर, गौर से देखने पर भाव भरी विशाल मूर्तियों बोलती हैं, जिनके हाथ-पैर, घड़ बड़ी सफाई से जोड़े गए थे। शायद वैसी दरारें रूसियों के मन में भी हैं। हैरत की बात है कि शायद ही किसी प्रतिमा की नाक टूटी हो जबकि पटना संग्रहालय में देखी अधिकतर प्रतिमाओं में हर बार कुछ टूटा मिलता था, तो नाक ही। जबकि भारतीय प्रतिमाओं की ज्यादातर नाक क्यों टूटती है? एक भोंडा, ख्याल रह रह कर आता बा। भारतीय परिप्रेक्ष्य में इन स्थानों का मूल्यांकन करते हुए जो अवसाद, पीड़ा सर्वेश्वर को महसूस होती है, उसे वे व्यक्त करते हैं- "इस यात्रा में हर समय मेरा देश मेरे साथ चिपका रहा और अनचाहे भी वहाँ का हर प्रसंग देश के किसी-न-किसी प्रसंग से जुड़ता जाता था और मन जितना कुछ देखकर खुशी से भरता था, उतना ही उदास हो जाता था।"*

सर्वेश्वर ने अपनी सोवियत यात्रा की स्मृतियों में इन दोनों विरुद्ध भावों की समानांतर अनुभूति के द्वंद्व को बराबर झेला है। झेलते हुए वे स्वीकारते हैं- "मस्क्वा में खाने की ही नहीं हर चीज का दाम हर जगह एक, कोई किचकिच नहीं। कोई समय की बर्बादी नहीं, खाने की चीजें साफ-साफ ढंग से रखी हुई। सबसे यड़ी तकलीफ जो होती है, वह यह सोच कर, कि अपनी सरकार 25 साल में खाने के सामान में मिलावट भी नहीं रोक सकी। वह तो बहुत कठिन काम नहीं है। उसके लिए तो विदेशी सहायता नहीं चाहिए। न गरीबी का रोना। रूखा सूखा ही सही, पर मिलावट रहित खाने का सामान 25 साल की आजदी के बाद भी हम क्यों नहीं पा सकते। इसका जवाब किसके पास है? औसत भारतीय पौष्टिक खाना तो दूर, जो खाता है, वह वस्तुतः क्या खा रहा है, किस नाम पर खा रहा है, नहीं जानता।" "मन की इस तकलीफ से बचने का मेरे पास कोई चारा नहीं था। हर वार रूस में कुछ भी खाते समय मुझे अपने देश की याद आती थी और में उस व्यवस्था को

कोसता था, जो 25 साल बाद भी मसालों में भूसा-लीद, मिठाइयों में सोखते, यी-सवान कोसता था, दिया मिट्टी और न जाने किन चीजों में क्या-क्या नहीं खिलाती है और बेचारा भारतीय सब खाने को मजबूर है।"

सर्वेश्वर की लघु संस्मरणात्मक पुस्तक में भी उनका कवि मन और पत्रकार व्यक्ति अपनी सहृदयता, प्रश्नाकुलता की पीड़ा तथा एक शिकायत भरा अंदाज लेकर प्रकट होता है, जिसमें सोवियतवासियों के जीवन-दर्शन और उनकी सांस्कृतिक-वैधानिक उपलब्धियों के प्रति जितनी प्रसन्नता है, उससे ज्यादा भारतीय जीवन-दर्शन और यहां तक कि सांस्कृतिक-सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों के नाते उत्पन्न होने वाली श्रीभ और पीड़ा। यहाँ पीड़ा शब्द जान-बूझकर इस्तेमाल किया गया है, क्योंकि श्रोम तो किसी के प्रति भी हो सकता है, जबकि पीड़ा शब्द गहरी आत्मीयता से जुड़ा हुआ है। पूरे संस्मरण में यह आत्मीयता देखी जा सकती है।"

शिल्पगत सौंदर्य

एक अच्छे संस्मरण लेखन हेतु शिल्प के स्तर पर आवश्यक उपकरण है- स्मृति यशोनिंदा, आत्मीयता, औत्सुक्य और भाषा की नाटकीयता आदि। व्यवस्थित होने के कारण ये सभी गुण इस संक्षिप्त पुस्तक को रोचक और पठनीय बना देते हैं। इसमें जहाँ एक ओर संस्मरण के विभिन्न आयामों को स्मृति के आधार पर शब्द मिले हैं वहीं दूसरी ओर भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्रा में आने वाले प्रदेशों के प्राकृतिक वैभव, कलाएँ और वहाँ के देशवासियों का सर्वेश्वर के प्रति प्रेम, सहृदयता, सहजता सब कुछ उभर कर सामने आ जाता है। हम चाहे तो यहीं बैठे-बैठे इस संक्षिप्त संस्मरणात्मक पुस्तक के सहारे सोवियत भूमि के निवासियों उनके आचार-विचार, निष्ठा और ईमानदारी, देश-प्रेम और बंधुत्व-भाव सबको एक साथ जीवंत और मृतं पा सकते हैं। किसी भी संस्मरण-साहित्य की इससे बड़ी उपलब्धि और कुछ हो भी नहीं सकती। एक संस्मरण-लेखक के रूप में भी सर्वेश्वर का रचनाकार हमें प्रभावित किए बिना नहीं रहता, बल्कि कई-कई बिंदुओं पर सोचने-विचारने के लिए विवश भी कर देता है।

अनुवाद

'कुछ रंग कुछ गंध' में उनकी सोवियत यात्रा की मधुर स्मृतियों के साथ ही कुछ प्रसिद्ध रूसी-कवियों की कविताओं का सर्वेश्वर द्वारा किया गया अनुवाद भी है। मूल रचना के आस्वाद गुणों को अनूदित रचना में लाना सहज नहीं है, परंतु यदि अनुवादक शब्द और शैली को केंद्र में रखकर अनुवाद कार्य संपादित करे, तो निश्चय

ही मूल के यथेष्ट निकट होने की संभावना होती है। वस्तुतः मूल से तादात्मय और अभिव्यक्ति की सहजता के समन्वय से अनुवाद अत्यंत कलात्मक एवं सुंदर बन पाता है। अनुवाद की प्रक्रिया बोध, विश्लेषण, भाषांतरण, समायोजन और संतुलन के आधार पर संपन्न होती है।"" इसीलिए, काव्य अनुवाद के कई स्तर मिलते हैं जैसे- शब्दानुवाद, छायावाद, भावानुवाद, व्याख्यानुवाद, सारानुवाद, रूपांतरण आदि। मूल कृति के आस्वाद को ज्यों का त्यों पाठक तक पहुँचाने के लिए कवि अपनी संवेदना और प्रेषणीयता के उपकरणों से अनुवाद करता है। इसलिए संभव है कि उसमें उसके व्यक्तित्व की भी क्षीण प्रतिध्वनि सुनाई पड़े। यह कार्य कठिन अवश्य है, किंतु श्लघनीय अनुवाद के लिए आवश्यक है।

सर्वेश्वर ने जिन कविताओं का अनुवाद किया, वे सोवियत संघ के प्रसिद्ध कवियों की आधुनिक संवेदना से युक्त कविताएँ हैं। इनमें बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से उनकी अनुभूतियाँ व्यक्त हुई हैं। भाषा, भाव और वोध के स्तर पर ये अनूदित कविताएँ सर्वेश्वर की अनुवादक प्रतिभा से भी प्रभावित करती हैं।" यहाँ सर्वेश्वर द्वारा अनुदित ब्लादीमीर मायकोवस्की की एक कविता उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है। कविता का शीर्षक है 'बादलों की बाजीगरी' :

ऊँचे

आकाश में तैरते हैं बादल

उनमें से चार नहीं तुम्हारा दल बल ।

पहले से तीसरे तक

वे थे आदमी, रहे थे तिर

जबकि चौथा था ऊँट।

फिर

जब वे इधर-उधर छितरा गए

तो राह में वे

अपने साथ

पाँचवें को पा गए।

जिसमें निकल

बे मतलब वला थी

दौड़ने लगे हाथी पर हाथी।

तब तक संभवतः छठवाँ नहीं आया

और उसने आकर

उनको नहीं डराया

बाल ये खो गए भीनी हवा में

और उनके बाद बादलों को भूसी की तरह चबाता

एक पीले जिराफ सा दीखा।

सूरज सटपट आता।

अपने इन काव्यानुवादों के संदर्भ में वे कहते हैं कि "और यह गंध यात्रा में पहले ही आई थी। कुछ वहीं मिली। कुछ की पहचान दूसरी गंधों के साथ मिल कर बनी। इसलिए निर्गंच कुछ नहीं होता, बशर्ते, कुछ निष्प्राण न हो। अंधेरे में भी सूरज की गंध आती है। कुछ कविताओं से पहले ही भेंट थी, उन्हें जीने के लिए अनुदित किया था। कुछ वहीं मिलीं, वहीं की भी ओर बाहर से आई थीं और गंध की तरह बस गई। काव्य की गंध उड़ती नहीं, बनी रहती है ठीक नाक के नीचे मानयात्मा की।

सर्वेश्वर का यह वक्तव्य पुस्तक में पहले है और अनूदित कविताएँ बाद में। उनकी बहुआयामी साहित्यिक प्रतिभा का आकलन इससे अच्छी तरह किया जा सकता है। उनके द्वारा अनूदित इन रूसी कविताओं में सोवियत जन-जीवन का रंग और गंध दोनों उपलब्ध हैं:

वैज्ञानिक हिला रहा है अपना सिर

कवि को जकड़ लिया है, दुःख ने

कि कैस्पियन सागर अपने शाश्वत तटों से

हटता दिन-प्रतिदिन सिकुड़ता जा रहा है

वयोवृद्ध उदास और चिंतित है

कि सागर प्रति वर्ष उथला होता जा रहा है।

मुझे लगता है कि यह बेवकूफी है।

किस प्रकार यह प्राचीन सागर उथला हो सकता है,

उथली तो होती जा रही है

आदमी की आत्मा

यही है समस्या जो आज मुझे

सबसे अधिक कचोटती है।

इन दोनों कविताओं की सहज प्रवाहमयता और विम्बात्मकता सर्वेश्वर को अनुवादक प्रतिभा को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

संपादक रूप नई कविता के प्रतिधित कवि एवं साहित्यकार शमशेर बहादुर सिंह की

प्रमुख कविताओं का एक संकलन और मूल्यांकन करने के साथ ही सर्वेश्वर ने बच्चों की एक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका पराग का संपादन भी किया है। उन्हेंनि बच्चों के लिए एक स्वस्थ और मनोरंजक साहित्य लिखने और लिखवाने के साथ- साथ ज्ञान के क्षेत्र में हो रही विविध खोजों एवं उनके परिणामों से भी उन्हें उनका परिचय कराया। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य पर दिखाई देने वाली अनेक विद्रूपताओं के प्रति वच्चों को सचेत कर जागरुक बनाने का प्रयास किया। एक संपादक के रूप में यह सर्वेश्वर की सबसे बड़ी उपलब्धि रही है। जब उन्हें 'पराग' का संपादन-कार्य मिला, तमी से उन्होंने बच्चों के मौलिक व्यक्तित्व विकास के मार्ग में आने वाले संकटों से लड़ने की प्रेरणा प्रदान करने वाली अनेक संपादकीय टिप्पणियाँ लिखीं।

डॉ. उर्मिलेश के शब्दों में, "वह 'दिनमान' से अनुभव पुंज लेकर एक नई दुनिया का सपना, नए मूल्यों और नए जीवन का पराग देश के सभी बच्चों के बीव बाँट देना चाहते थे। वह बच्चों को इस भ्रष्ट, धूर्त और मानवीयतंत्र के शिकंजे से दूर रखना चाहते थे, वह बच्चों के लिए एक सुंदर और सीद्देश्य जिंदगी चाहते थे, ताकि वे बड़े होकर समूची मानव जाति के लिए एक नई दुनिया की नींव डालें, जहाँ हमारे सपने आजाद हों, जहाँ हमारे बच्चों के सपनों में मूख, बीमारी, भय और मृत्यु प्रवेश न कर सके।"

एक संपादक के रूप में उन्होंने 'पराग' के माध्यम से बच्चों को एक सार्यक दिशा में सोचने, समझने और कार्य करने की क्षमता पैदा करने वाली रचनाएँ दीं, साथ ही अन्य लेखकों को इस दृष्टि से लेखन-कार्य करने के लिए भी प्रेरित किया। शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं का संपादन करते हुए उन्होंने उनकी चुनी हुई ऐसी कविताएँ रखी हैं, जिससे वे अपनी शिल्पगत कठिनाइयों के बावजूद पाठकों के मन में अपनी बात उतार सकें। औचित्य, सोद्देश्यता, स्पष्टता, निर्भीकता तया रचनात्मकता के स्तर पर उनका संपादीय व्यक्तित्व भी उनके बहुमुखी व्यक्तित्व के एक सार्थक आयाम से भी परिचित कराता है।

कहा जा सकता है कि एक संस्मरण लेखक, अनुवादक और संपादक के रूप में भी उनका व्यक्तित्व अपनी आत्मीयता, सहजता, स्पष्टता और निर्भीकता के कारण पाठक को प्रभावित करता है। उनके व्यक्तित्व के इन विभिन्न पक्षों पर विचार करते हुए यह मानना पड़ता है कि उनकी रचनाधर्मी चेतना प्रसरणशील है। वह अपने भीतर अनुभव की व्यापकता को समेटने वाली अनेक विधाओं में न केवल प्रवृत्त रही है, अपितु उसने उन अनुभवों को अधिक स्पष्टता और निर्भीकता के साथ व्यक्त करते हुए मानवीयता को सम्मानित करने के उद्देश्य से भरपूर संवर्ष भी किया है। वस्तुतः इन

विविध रूपों में अपनी संघर्ष चेतना के दम पर ही सर्वेश्वर एक सशक्त सामाजिक साहित्यकार के रूप में स्थापित हैं।

संदर्भ

1.सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 281

2. हिंदी साहित्य कोश (भाग-1) धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 803

3. सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 282

4. हिंदी का संस्मरण साहित्य डॉ. कामेश्वर शरण सहाय, पृ. 424

5. हिंदी साहित्य में जीवन चरित का विकास डॉ. चंद्रवती सिंह, पृ. 20

6. हिंदी का संस्मरण साहित्य डॉ. कामेश्वर शरण सहाय, पृ. 410

7. वही, पृ. 415

8. सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 284

9. हिंदी साहित्य कोश (भाग-2) धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 608

10. बही, पृ. 608

11. सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 285

12. हिंदी का संस्मरण साहित्य डॉ. कामेश्वर शरण सहाय, पृ. 411

13. हिंदी साहित्य कोश (भाग 1) धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 608

14. हिंदी का संस्मरण साहित्य डॉ. कामेश्वर शरण सहाय, पृ. 525

15. कुछ रंग कुछ गंध : सर्वेश्वर दयाल सक्ससेना, पृ. 2

16. वही, पृ. 11

17. वही, पृ. 29

18. वही, पृ. 12

19. वहीं, पृ. 7

20. सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 290

21. आधुनिक पत्रकारिता डॉ. अर्जुन तिवारी, पृ. 124

22. सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 291

23. कुछ रंग कुछ गंच : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 83

24. वही, पृ. 74

25. वही, पृ. 83

26. मुक्ति प्रवेशांक : जुलाई 1984, पृ. 10

27. सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 295

अध्याय-6

सर्वेश्वर : पत्रकारिता दृष्टि

सामान्य अर्थों में पत्रकारिता जन-भावना की अभिव्यक्ति, सद्भावों की उद्धृति और नैतिकता की पीठिका है। संस्कृति और स्वतंत्रता की वाणी होने के साथ ही यह जीवन में अभूतपूर्व क्रांति की अग्रदूती है। नेपोलियन का यह कथन सर्वमान्य है कि पत्रकारिता के क्षेत्र में काम करने वाले टीकाकार, सलाहकार, बादशाहों के प्रतिनिधि और राष्ट्र के शिक्षक होते हैं। चार विरोधी पत्र चार हजार संगीनों से अधिक खतरनाक होते हैं।

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो।

जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।।

असहायों को सम्बल, पीड़ितों को सुख, अज्ञानियों को ज्ञान-ज्योति एवं मदोन्मत्त शासकों को सद्बुद्धि देने वाली पत्रकारिता ही है, जो समाज-सेवा और विश्व-बंधुत्व की स्थापना से सक्षम है। पाश्चात्य विद्वान जैम्स मैकडानल इसे एक वरेण्य जीवन-दर्शन स्वीकार करते हुए रणभूमि से भी अधिक बड़ी चीज मानते हैं। उनके लिए यह कोई सामान्य पेशा नहीं, बल्कि उससे बहुत बड़ी चीज है जिसके प्रति उन्होंने अपने आपको स्वेच्छापूर्वक समर्पित कर दिया। पत्रकारिता के महत्त्व का अनुमान समर्थ साहित्यकार एडिसन को भी था। उन्हें पत्रकारिता कला से अधिक मनोरंजक, अधिक विमोहक, अधिक रसमयी तथा सर्वतोमुखी कोई दूसरी बीज नहीं लगती थी। एक स्थान पर बैठकर प्रतिदिन सहस्रों नर-नारियों तक पहुँचना, उनसे अपने मन की बात कहना, सलाह देना, वे क्या करें क्या न करें, इस संबंध में परामर्श देना, उनका शिक्षण और मनोरंजन करना तथा आवश्यक हो तो उन्हें चिढ़ा भी देना-कैसा आश्चर्यजनक होता होगा, यह सोच कर ही वे स्पंदित हो उठते थे। वास्तव में परिवर्तनशील जगत् का प्रतिक्षण दर्शन पत्रकारिता द्वारा ही

संभव है, जो सबके आकर्षण का केंद्र बिंदु है।

मानव जो कुछ भी अनुभव करता है, उसे अभ्य व्यक्तियों को बताना चाहता है, साथ ही सबकी बातों को जानना भी चाहता है। किसी घटना को परखना और उसका वर्णन करना मानव-मन की एक सहज प्रवृत्ति है। इसी भावाभिव्यक्ति की प्रवृत्ति के कारण जन-माध्यमों का आविष्कार हुआ। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि "जिरा प्रकार ज्ञान-प्राप्ति की उत्कंठा, चिंतन एवं अभिव्यक्ति की आकांक्षा ने माषा को जन्म दिया, ठीक उसी प्रकार समाज में एक-दूसरे के संपर्क स्थापन की प्रवल इच्छा ने पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन को बढ़ावा दिया। इस प्रहार परिस्थितियों के अध्ययन, चिन्तन, मनन और आध्यात्मिकता की प्रवृत्ति तथा सर्वजन हिताय सर्वजनसुखाय के प्रति व्यग्रता ने पत्रकारिता को जन्म दिया।"

पत्रकारिता

पत्रकारिता अपने समय और समाज के संदर्भ में सजग रहकर सामाजिकों को 'दायित्वबोध कराने की कला है।' श्री राम कृष्ण रघुनाथ खाडिलकर ने पत्रकला और पत्रकार कला-इन दो शब्दों का प्रयोग किया है। उनके शब्दों में "ज्ञान और विचार शब्दों तथा चित्रों के रूप में दूसरे तक पहुँचाना ही पत्रकला है।"

समाचारों का संकलन एवं प्रसारण ही पहले पत्रकारिता के अंतर्गत किया जाता रहा, किंतु जैसे-जैसे समाचार पत्रों में समाचार-प्रेषण मुद्रण और वितरण के उपादानों में वैज्ञानिक विधियों और शिल्पगत विकास की दिशा उन्नत होती गई उसी के समानांतर पत्रकारिता का क्षेत्र विस्तृत होता गया। छपने वाले लेख, समाचार तैयार करना ही पत्रकारिता नहीं रह गई। आकर्षक शीर्षक देना, पृष्ठों का आकर्षक रूप, जल्दी-से-जल्दी समाचार देने की होड़, देश विदेश के प्रमुख उद्योग-धन्धों के विज्ञापन प्राप्त करने की चतुराई, सुंदर छपाई और पाठक के हाथ में सबसे जल्दी पत्र पहुँचाने की त्वरा, ये सब पत्रकार-कला के अंतर्गत आ गए।'

जनचेतना के अनुरूप ही प्रकाशन, संपादन, लेखन एवं प्रसारण युक्त समाचार माध्यम का व्यवसाय ही पत्रकारिता है। भारत के आरंभिक पत्रकारों ने पत्रकारिता को जब एक मिशन के रूप में अपनाया था, तव व्यावसायिक दृष्टि की तो कल्पना भी नहीं थी, पर आज की पत्रकारिता व्यावसायिकता का रूप ले चुकी है। इसकी संपूर्ण व्याप्ति को समेटने के लिए कहा जा सकता है कि सामयिक और महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संग्रह तथा संपादन विकासशील ज्ञान-विज्ञान की सामग्री तथा नए चिन्तन और विचारों को समीक्षात्मक टिप्पणियों के साथ जन-जन तक पहुँचना ही पत्रकारिता है।

पत्रकारिता के गुण-धर्म

याह ध्यातव्य है कि "मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में तान- विज्ञान और विचारों की उपयोगिता सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक मर्यादाओं के अनुकुल निर्धारित होती है। पत्रकार का स्थान आधुनिक समाज में इनीलिए बड़े महत्व का है, क्योंकि वह समाज और राष्ट्र के प्रति अपनी अत्यंत द्वावित्वपूर्ण भूमिका को निर्वाह में आत्यंतिक रूप से सहभागी होता है। सामाजिक जीवन में जिन प्रश्नों पर उचित निर्णय की आवश्यकता होती है और जिन निर्णयों पर समाज का जीवन अंततः निर्भर करता है, उनके बारे में जनता को उपयोगी जानकारी देना, इनके संबंध में जनमत का निर्माण और नेतृत्व करना, उस मत को प्रकट करना तथा उससे अधिक से अधिक जनता को लाभ पहुँचाना, एका आदर्श पत्रकार के गुणधर्म के अंतर्गत् आता है। इस दायित्वबोध के कारण ही पत्रकार के निए पत्रकारिता मात्र एक कला या जीविकोपार्जन का साधन नहीं होती, बल्कि सच्चे अर्थों में यह उसके लिए कर्तव्य-साधन की एक पुनीत प्रवृत्ति होती है।""

पंडित बाबूराम विष्णु पराडकर ने जो कि एक प्रसिद्ध पत्रकार थे; पत्रकारिता के दो मुख्य धमों की चर्चा करते हुए कहा कि "पत्रकारिता के दो मुख्य धर्म हैं- "एक तो समाज का चित्र खींचना और दूसरे उसे सदुपदेश देना। समाज की प्रकृत अवस्था का वर्णन, गुण-दोष-विवेचन, सुधार, मार्ग-प्रदर्शन और मनोरंजन पत्रकारिता के अन्य गुण हैं।

एक पत्रकार को परिवेश का चित्र खींचने और उसे सदुपदेश देने के लिए आवश्यक है कि यह परिवेश घटित घटनाओं के प्रति संवेदनशील हो। पत्रकार का प्रत्यक्ष संबंध समाज एवं सामाजिक गतिविधियों से अनिवार्य रूप से होना चाहिए। समाज का यथार्थ चित्र संवेदनशील बनकर ही पत्रकार प्राप्त कर सकता है, न कि चुराकर। यदि पत्रकार संवेदनशील है तो निश्चित रूप से वह उन घटनाओं के प्रति सहज ही आकृष्ट होकर उनका यथोचित वर्णन कर अपने कर्म का संपादन करेगा। जितनी दक्षता और गहराई से वह इस कार्य को करेगा अपने लक्ष्य में उसे उतनी ही सफलता प्राप्त होगी।

पत्रकारिता की आचार-संहिता

प्रत्येक देश में पत्रकारिता को उच्छृंखल और दायित्वहीनता को बचाने के लिए उस देश के पत्रकार अपने लिए एक आचार संहिता स्थिर करते हैं। 'अखिल भारतीय समाचार पत्र संपादक सम्मेलन' द्वारा पारित आचार संहिता में निम्न छः विन्दुओं को प्रस्तावित किया गया है-

सर्वेश्वर : पत्रकारिता दृष्टि/ 103

1. जनमत तैयार करने के प्रधान साधन अखधार होते हैं, इसलिए पत्रकारों को अपने काम को बाती समझना चाहिए और विश्व की शांति तथा जनहित को रक्षा और सेवा के लिए हमेशा तत्पर रहना चाहिए।

2. मूल मानवीय और सामाजिक अधिकारों का पत्रकार को उचित आदर करना चाहिए। अपनी वृत्ति या पेशे को पुनीत कत्र्तव्य मानकर समाचार देते समय पत्रकार को हमेशा निष्ठावान और न्यायनिष्ठ होना चाहिए।

3. जातीय, धार्मिक और आर्थिक कारणों से उत्पन्न सामाजिक खिंचावों के समाचार देते समय या उन पर टीका-टिप्पणी करते समय पत्रकारों को खासतौर से अपने ऊपर नियंत्रण रखना चाहिए।

4. किसी के व्यक्तिगत जीवन के संबंध में अफवाहें या अन्य बातें छापना कर्तव्यच्युत होना है। जनता को खुश करने के लिए या लोगों की उत्सुकता को शांत रखने के लिए नहीं, पर यदि जनहित के ख्याल से यह आवश्यक हो ही जाए, तभी किसी के निजी जीवन की बात पुष्ट आधार पर छापी जा सकती है।

5. पत्रकार न केवल समाज की जानकारी के लिए घटनाओं के वृत्तांत लिपिबद्ध करता है, अपितु यह जनता का परामर्शदाता और प्रतिनिधि भी होता है, इसलिए पत्रकारिता को सार्थक करने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी जनता के साथ विश्वाबात न करे। उसकी लेखनी से वही शब्द निकलें जिनके सत्य और न्यायसंगत होने की साक्षी उसकी अंतरात्मा हो।

6. इसी प्रकार स्वतंत्र बुद्धि, आत्मसम्मान, पक्षपातहीनता, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, अनुवांशिक या धार्मिक पूर्वाग्रह से मनुष्य-मनुष्य में भेद न करना, जनता को विशुद्ध, सत्य और द्वेष रहित समाचार देना पत्रकार के अनिवार्य गुण-धर्म हैं।

सरकार और सरकार, सरकार और जनता, जनता और दल व्यक्ति और समाज में परस्पर सहयोग और तालमेल उत्पन्न करने के एक मुख्य और प्रभावोत्पादक साधन के रूप में पत्रकारिता आज महत्त्वपूर्ण विधा बन गई है और इसका प्रयोजन भी लोक-कल्याण के निमित्त कार्य करना है। निश्चय ही इसके लिए विशाल जानकारी, तर्कसंगत और निष्पक्ष विचार करने की क्षमता, सूझ-बूझ, कौशल, कल्पना-शक्ति आत्माभिव्यक्ति, जनता से प्रेम और सहानुभूति की भावना और इन सबसे अधिक सच्चाई और ईमानदारी की आवश्यकता है।

पत्रकारों की कोटियाँ

"आज की अवसरवादी और नितान्त भौतिकवादी दृष्टि ने व्यक्ति को बहुत दूर तक प्रभावित किया है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मानवीय गरिमा प्रभावित हुई है। इस प्रकार की अप्रत्याशित प्रवृत्तियों का दुष्प्रभाव जीवन के सभी क्षेत्रों में देखा जा रहा है। पत्रकारिता भी इससे अछूती नहीं रह गई है। डॉ. राजबली पाण्डेय ने दिग्दर्शक' पत्र के प्रथम अंक विमोचन महोत्सव पर तीन प्रकार के पत्रकारों और उनके कार्यों का विवेचन किया है। उनके अनुसार एक पत्रकार वह है, जो विवेक को अलग रखकर प्रशंसा और निंदा द्वारा लोक-जीवन में अनेकानेक भ्रांतिया फैलाकर अपना दायित्व पूरा करता है। दूसरे प्रकार के पत्रकार वे हैं जो नितांत अवसरवादी हैं, जिनका उद्देश्य येन-केन प्रकारेण पैसा कमाना मात्र है। इनमें अपने गुण-धर्म के प्रति किसी प्रकार की भी निष्ठा का प्रायः अभाव दिखाई देता है। इन दोनों कोटियों से अलग हटकर तृतीय प्रकार के कुछ ऐसे पत्रकार भी हैं, जो युग की विषैली मानसिकता को झेलकर भी रचनात्मक ढंग से लोकजीवन के निर्माण और प्रशिक्षण में अपना योगदान दे रहे हैं।""

उन्हीं के शब्दों में, "युग-चारण पत्रकार विवेक को अलग रखकर स्तुति-निंदा के पाश में बँधकर दिग्दर्शन की जगह दिग्भ्रांति फैलाते हैं। युग को चबाने का काम भी कुछ पत्रकार करते हैं। इनका ध्येय येन-केन प्रकारेण अर्थ-प्राप्ति मात्र है। युग के उत्थान-पतन की चिंता इनमें नहीं होती। युग-मानस की निर्मिति एवं उसके प्रशिक्षण का दायित्व युग-चरण पत्रकार निबाहते हैं।""

पत्रकारिता का आदर्शात्मक स्वरूप

डॉ. रविंद्र उपाध्याय के शब्दों में- "हिंदी पत्रकारिता का आदर्श महान है और उद्देश्य राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में योगदान देना है। निश्चय ही इस बहुमुखी विधा में मनुष्य-स्वभाव की हीन वृत्तियों को उत्तेजना देना, हिंसा-द्वेष फैलाना, लोगों की घरेलू बातों पर कुत्सित टीका-टिप्पणी करना, आमोद-प्रमोद के अभाव को अश्लीलता से पूर्ण करने की चेष्टा करना और देश-भक्ति के बहाने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति करना, कभी श्रेयष्कर नहीं माना जा सकता। सुविधा की राजनीति से पत्रों का दूर रहना ही वांछनीय है। गुण-दोष विवेचना की छिछली मानसिकता पत्रकारिता में कभी भी वरेण्य नहीं होती। लोक-प्रशिक्षण ही वह आदर्श है, जिससे जुड़कर पत्रकारिता अपनी गरिमा बनाए रख सकती है।""

सन् 1950 ई. में अखिल भारतीय संपादक सम्मेलन के अवसर पर पं. जवाहर लाल नेहरू ने पत्रकारों से इसी बात की ओर संकेत करते हुए कहा था,

जीवन में जो कुछ निकृष्ट है, उसको क्रमशः बढ़ोत्तरी को रोकने में सहायता करना पत्रकार का काम है। पत्रकारों को अधिक ऊँचे दर्जे की तथा अधिक उज्ज्वल सामाजिक-चेतना के निर्माण में ही सहायता नहीं करनी है, वरन् जीवन की छोटी- छोटी बातों में सामाजिक व्यवहार सिखाना है अभी हमारी पत्रकारिता तमिस्त्रगामी भले ही दीख पड़े, परंतु हमारे पास चितन-साधना और तपस्या में रखे हुए तेजोद्दीप्त पत्रकारों की एक लंबी परंपरा है। इसलिए आशा करनी चाहिए कि हम प्रकाशोन्मुख ही रहेंगे।

पत्रकारिता और साहित्य का अंतरंग संबंध

तात्कालिकता के माध्यम से पत्रकारिता शाश्वत की साधना है। शाश्वत को साधना साहित्यकार और पत्रकार दोनों का अभीष्ट है। यद्यपि नाम दो हैं, परंतु यदि सूक्ष्मता से निरीक्षण करें तो स्पष्ट होगा कि पत्रकार एवं साहित्यकार में तात्विक दृष्टि से कोई भेद नहीं है। बालकृष्ण राव इस संबंध में कहते हैं कि "समसामयिक परिवेश से किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक लेखक प्रेरणा ग्रहण करता है, चाहे वह साहित्यकार हो या पत्रकार। दोनों ही लेखक हैं, दोनों ही सर्जनकार हैं, दोनों के कार्य किन्हीं ऐस गुणों की अपेक्षा करते हैं, जो दोनों के लिए अपरिहार्य हैं- अनाविल दृष्टि, चिंतन- लेखन में प्रेषणीयता की शक्ति दोनों देश-काल के आयामों पर अपनी-अपनी विशिष्ट परम्पराओं के अतिरिक्त उस संश्लिष्ट सांस्कृतिक परंपरा, उस चेतना प्रवाह से मी संबद्ध हैं, जिससे उन्हें अपनी बात औरों के प्रति निवेदित करने की प्रेरणा और शक्ति मिलती है। प्रत्येक पत्रकार अंशतः साहित्यकार भी है और प्रत्येक साहित्यकार अनिवार्यतः पत्रकार भी।""

"अनाविल दृष्टि, चिंतन मनन और लेखन में प्रेषणीयता की शक्ति से परिपूर्ण होकर पत्रकार और साहित्यकार दोनों 'सत्यं शिवं सुंदरम्' की उपासना करते है। मानवता की सेवा पवित्र भाव से दोनों ही करते हैं। सत्य एवं न्याय की स्थापना, अनाचार शोषण तथा दासता को दूर करने के लिए और समाज को सन्मार्ग पर लाने के लिए दोनों कटिबद्ध दिखाई पड़ते हैं। स्थूल और सूक्ष्म के अवलोकन एवं विवेचन में पत्रकार एवं साहित्यकार दोनों अपने-अपने ढंग से सफल होकर अपना योगदान देते हैं।"

इसे स्पष्ट करते हुए बालकृष्ण राव कहते हैं कि "पत्रकार जगत् का सूक्ष्म द्रष्टा होने के सिवा दूसरा है ही क्या? लौकिक और अलौकिक जगत मानव-जीवन को जिस प्रकार प्रभावित करते रहते हैं और जिस प्रकार मानव उन्हें प्रभावित करता रहता है, उनका साक्षात्कार और चित्रण करना पत्रकार का मुख्य कार्य होता है। जीवन

और जगत् का यह पारस्परिक घात-प्रतिघात और दोनों का वास्तविक रूप उसके अंतस्तल में जिन अनुभूतियों, कल्पनाओं, विचारों और भावनाओं तया आदशों का सर्जन करते हैं, उन्हें यह अभिव्यक्त कर देता है और अभिव्यक्ति की वह धारा ही पत्रों के स्तंभों में प्रवाहित होती रहती है। पत्र वे दर्पण हैं, जिनमें पत्रकार जगत् के स्वरूप को प्रतिविम्बित कर देता है। पत्र वे पट हैं जिन पर अपने लेखन के द्वारा वह संसार को चित्रित कर देते हैं।

एक साहित्यकार की ही भाँति हर व्यक्ति के मन की गहराई उसके अंतर्द्वद्धों उसकी चेतना और बौद्धिक क्षमता को उचित रूप से मापने परखने की क्षमता पत्रकार में भी निहित होती है। साहित्यकार और पत्रकार अपनी कल्पनाशीलता, भाव प्रवणता, विवेक, बुद्धि, तर्क-अनुभूति और विश्लेषण क्षमता के बल पर उचित-अनुचित का मूल्यांकन करते हैं, किंतु साहित्य अधिक संवेदनशील और कल्पनाशील होने के कारण कभी-कभी यथार्थ से दूर पहुँच जाता है, जबकि पत्रकार यथार्थ की दुनिया का ही अवलोकन एवं चित्रण करता है।

बहुधा लोग यह स्वीकार करते हैं कि पत्रकारिता में सार्वकालिक बातें नहीं मिलतीं, जो साहित्य की अपनी विशिष्टता है। संभवतः इसी कारण से प्रसिद्ध साहित्यकार मैथ्यू अर्नाल्ड ने पत्रकारिता को शीघ्रता में लिखा जाने वाला साहित्य स्वीकार किया है। यह हो सकता है कि कुछ घटनाएँ साहित्य की परिधि में न आयें, किंतु पत्रों के विविध स्तंभों में प्रायः ऐसा साहित्य भी स्वतः रचित होता है, जिसका महत्त्व तात्कालिक नहीं होता।

कालांतर में पुस्तकाकार रूप ग्रहण करने वाले विविध स्तम्भ इसके प्रमाण हैं- भारतेंदु हरिश्चंद्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बाबूराव विष्णु पराड़कर, शिवपूजन सहाय, प्रेमचंद, निराला, श्रीकृष्ण देव प्रसाद गौड 'बेढब बनारसी' द्वारा विपुल मात्रा में लिखित स्तम्भ-साहित्य इस दृष्टि से विशेष महत्त्व का है, जिनकी सार्वकालिक महत्ता को नकारा नहीं जा सकता।

पत्रकारिता से जन्मी साहित्यिक विधाएँ

हिंदी-जगत् में पत्र-पत्रिकाएँ साहित्य की विविध विधाओं की जन्मदात्री रही हैं। "राष्ट्र की आकांक्षाओं, विचारों और प्रेरणाओं की वाहिका के रूप में पत्रों ने ही हिंदी को राष्ट्रवाणी का रूप दिया। हिंदी साहित्य और भाषा संबंधी अनेक आंदोलन पत्र-पत्रिकाओं द्वारा ही सशक्त हुए। छायावाद युग में 'गद्य-गीत' नामक विधा सर्वश्री रायकृष्णदास, माखनलाल चतुर्वेदी, श्री नारायण चतुर्वेदी, पं. श्री राम शर्मा, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', डॉ. रामविलास शर्मा आदि पत्रकारों की देन है। 'माधुरी',

"सुधा', 'विशाल-भारत', 'सरस्वती', 'हंस', 'धर्मयुग' और 'कादम्बिनी' में महत्वपूर्ण संस्मरण बिखरे पड़े हैं।

"सरस्वती; ने हिंदी जगत् की जो सेवा की यह समस्त हिंदी जगत् जानता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भारतीय जनता के विचारार्थ व्यक्ति, बौद्धिक विकास एवं चेतना हेतु सुदृद्ध व्यवस्थित तथा परामार्जित भाषा का निर्माण और सत्साहित्य इसी के माध्यम से हिंदी-जगत् को दिया। द्विवेदी जी जैसा पत्रकार न होता तो पं. रामनरेश त्रिपाठी, नाथूराम शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, गोपाल शरण सिंह, मुकुटधर पाण्डेय और वृंदावनलाल वर्मा जैसे सैकड़ों साहित्यकार हिंदी-जगत् को न मिलते। वास्तव में साहित्य की अनेक विधाओं को गतिशील बनाने का उत्तरदायित्व पत्रकार को ही निभाना पड़ता है।""

जार्ज बर्नाड शॉ ने एच. डब्ल्यू. मसिंचम को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था कि "कुशत पत्रकार साहित्यकार से भिन्न नहीं है। अगर साहित्य का काम संसार को ठीक-ठीक देखना और परखना है तो पत्रकारिता का भी पहला काम यही है। शाश्वत साहित्य के लिए पत्रकारिता अवरोध नहीं, बल्कि सहायक आधार हैं

सर्वेश्वर का समर्थ माध्यम पत्रकारिता

सर्वेश्वर की बहुमुखी प्रतिभा और बहुमुखी लेखन का एक महत्त्वपूर्ण अंग पत्रकारिता है। 'दिनमान' जैसी विशिष्ट साप्ताहिक पत्रिका में प्रकाशित टिप्पणियों और समीक्षाओं में सर्वेश्वर के पत्रकार रूप के चित्र मिलते हैं। इनका पत्रकार व्यक्तित्व जीवंत, निराला और समर्थ दिखाई देता है। इनका अपने परिवेश और समाज के प्रत्येक स्पंदन के साथ गहरा सरोकार है। तत्कालीन युगीन समस्याओं से चिंतित मन की पीड़ा, सामाजिक और राजनैतिक विद्रूपताओं एवं विसंगतियों पर तीव्र प्रहार, नृत्य, रंगमंच, कला एवं संस्कृति संबंधी टिप्पणियों, लेखों में निहित गहन सौंदर्य-बोध इनके पत्रकार व्यक्तित्व की विशिष्टता को रेखांकित करता है।

सर्वेश्वर की साहित्यिक पत्रकारिता

पत्रकारिता का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत एवं व्यापक है। पत्रकारिता को तात्विक आधार पर दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है-

"साहित्यिक पत्रकारिता को छोड़कर शेष को सामान्य पत्रकारिता के अंतर्गत् रखा जा सकता है। दोनों विभाजनों में सामान्य पत्रकारिता का महत्त्व कम तो नहीं कहा जा सकता, किंतु इतना अवश्य है कि, इसमें दैनन्दिन घटनाओं को तात्कालिक

कारणों और समाधानों के परिप्रेक्ष्य में देखकर कुछ चटपटे समाचार प्रकाशित कर दिए जाते हैं जिसमें सारी बातों के मूल में जाकर गहरी छानबीन किए बिना तात्कालिक सामाजिकता के अनुकूल पत्रकार अपनी प्रतिक्रिया भर व्यक्त करके रह जाता है। साहित्यिक पत्रकारिता का स्वर, सामान्य पत्रकारिता से इसीलिए भिन्न और विशिष्ट हो जाता है कि इसमें लेखक के संवेदनशील मन की अनुभूति-राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक और आदर्श-विकास की स्थितियों को ध्यान में रखकर, सारी परिस्थितियों की जाँच-पड़ताल करते हुए व्यक्त होती है। इसके चलते वह व्यापक मानवीय संवेदना से जुड़कर घटनाओं की छानबीन करते हुए उसकी जड़ तक पहुँचने का प्रयल करता है।

अनेकानेक विसंगतियों के कारण अपनी बात कहने के लिए उसे व्यंग्य का आश्रय लेना पड़ता है। विशिष्ट दृष्टि-संपन्न लेखक अपनी संवेदनशीलता के कारण घटित घटनाओं के मूल कारणों को तदनुकूल व्यक्त करता है और बड़ी गहराई से अपने पाठकों को प्रभावित करते हुए उसकी संवेदना के वृत्त का विस्तार करने में भी सफल हो जाता है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का संबंध इसी प्रकार की विशिष्ट पत्रकारिता से है। 'दिनमान' और अन्य पत्र-पत्रिकाओं की टिप्पणियों, समीक्षाओं तथा संपादकीय में उनके अत्यंत सजग, सतर्क पत्रकार की दूर-दृष्टि संपन्नता के साथ-साथ मानवीय संवेदना का स्पंदन देखा जा सकता है।""

सर्वेश्वर ने जब हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण किया, उस समय की हिंदी पत्रकारिता की स्थिति की चर्चा करते हुए केशवचंद्र वर्मा कहते हैं, "आज की हिंदी पत्रकारिता सिर्फ बंद दिमाग के अनपढ़ लोगों के लिए ही सीमित है। उसे स्तरीय, अर्थमय और गरिमामय बनाने के लिए हिंदी का औसत पत्रकार न तो अपने को पूरी तरह से तैयार करता है और न उन-हरवे हथियारों से अपने को लैस करता है, जो उसकी बात में वजन पैदा करते हैं जिसे पढ़कर कोई भी पाठक उसकी अनदेखी न कर सके जिसे पढ़कर न तो विरक्ति या उदासीनता का घेरा घुमड़ने लगे और न आक्रोश मात्र बड़बड़ाहट में बदल कर रह जाए। हर लिखा हुआ शब्द उस टंकार को प्रतिध्वनित कर सके, जो समसामयिक होते हुए भी जीवन के गहरे मूल्यों पर हिंदी पाठक की आस्था वापस लौटाए और इस वापसी में वे सब क्रातिकारी परिवर्तन अपने में एक रस होकर मिल जाएँ।"

समकालीन पत्रकारिता की खिन्नता से बिलकुल अलग स्वर में ये स्वतंत्रता आंदोलन के समय की पत्रकारिता की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। इस संदर्भ में केशव चंद्र वर्मा कहते हैं- "ऐसी पत्रकारिता हिंदी में उन वक्तों में थी, जब लोग 'स्वराज्य' के सपने देखा करते थे और उनके लिखे हुए शब्द लोगों को जगाते थे।

उन्हें उन शब्दों के इस्तेमाल की कीमत भी चुकानी पड़ती थी नौकरी से निकाला जाना, जेल, लाठी- कुकर्की। हिंदी पत्रकारिता तब उस ठीहे से बोलती थी-निसक पीछे-पीछे पूरा आंदोलन दौड़ता रहता था।""

स्वतंत्र और निष्पक्ष दृष्टि : "समकालीन पत्रकारिता के धूमिल वातावरण में एकाच पत्र-पत्रिकाओं ने स्वतंत्र, तटस्थ और निष्पक्ष चिंतन की फिर से पढ़े-लिखे मानस के साथ जोड़ने की कोशिश की। छठे दशक में 'दिनमान' ने इस तरह की नई पहल की। उसे सफलता भी मिली, क्योंकि हिंदी की अनेक रचनाकार प्रतिमाओं ने 'दिनमान' के माध्यम से हिंदी पत्रकारिता को सर्वथा नया उत्कर्ष प्रदान किया, जिसका स्वाद पढ़ा-लिखा पाठक बहुत दिनों से भुला बैठा था। 'दिनमान' के साथ जो समर्थ लोग सामने आए, उनमें सर्वेश्वर एक सशक्त नाम था। वे हिंदी के प्रतिभावान कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे।"

केशवचंद्र वर्मा के ही शब्दों में "उनकी 'दिनमान' में मृत्युपर्यंत चलने वाली कलम इस प्रवाद को बराबर झुठलाती रही कि 'कवि आदमी' कविता लिखने के अलावा और कुछ नहीं कर सकता। सर्वेश्वर जैसे लोगों ने ही यह सिद्ध कर दिया कि यदि पत्रकार समर्थ है तो वह रचनाकार को आगे-पीछे कहीं-न-कहीं से दिशा निर्देश भी कर सकता है।""

सर्वेश्वर की पत्रकारिता के विविध आयाम

पत्रकारिता के क्षेत्र में भी सर्वेश्वर ने अभूतपूर्व लोकप्रियता हासिल की है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण 'दिनमान' और विविध पत्र-पत्रिकाओं में लिखी गई उनकी टिप्पणियों में मिलता है। 'दिनमान' के 'चरचे और चरखे' शीर्षक स्तंभ में लिखा गया सर्वेश्वर का संपूर्ण लेखन पत्रकारिता के क्षेत्र में मील का पत्थर प्रमाणित हुआ है। उनका बहुआयामी लेखन जो पत्रकारिता के क्षेत्र में हुआ है उसका प्रशंसापूर्ण स्मरण प्रायः आलोचकों द्वारा किया जाता रहा है।

"सर्वेश्वर ने पिछले बीस वर्षों में बहुत लिखा-बहुआयामी चीजें लिखीं। उन्होंने 'दिनमान' के साहित्य, संगीत और कला के स्तंभों में बहुतेरी बातें उठाईं। उनका गुमनामी या बाद में 'स-द-स' के हस्ताक्षरों से लिखा हुआ स्तंभ 'चरचे और चरखे' व्यंग्य से भरा हुआ तिलमिलाने वाला लेखन होता था। इस स्तम्भ में सर्वेश्वर ने देश में घट रही हर स्थिति पर अपनी बेलाग टिप्पणियाँ दी थीं। अक्सर 'दिनमान' की संपादकीय नीति उसी 'चरचे और चरखे' को पढ़कर जानी जाती थी।""

"चरचे और चरखे' स्तंभ से व्यक्त किए गए विचारों में सर्वेश्वर का अत्यंत सहज और संवेदनशील व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है। पत्रकारिता के अपने

बहुआयामी लेखन में उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक जैसी प्रायः सभी क्षेत्रों में घट रही घटनाओं पर अपनी टिप्पणियों की हैं। उन्होंने पत्रकारिता हे क्षेत्र में आने वाले अन्य विषयों-जैसे, ज्योतिष, खेलकूद, प्रदर्शनी आदि पर उतना नहीं लिखा, जितना सामाजिक और आर्थिक समस्याओं से जुड़े आम आरवनना दुख-दर्द पर लिखा है। सर्वेश्वर मूलतः सबसे गरीब आदमी, जिसमें किसी भी के अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने भर की सामर्थ्य दिखाई पड़ती है, के साथ होने वाले सामाजिक अन्याय और शोषण को ही अपने लेखन में प्रथम स्थान देते हैं। उसके विरुद्ध वे अपने लेखन के माध्यम से ही पाठकों के मन में संवेदना उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हुए एक प्रकार का जनमत निर्माण करते हैं।

'चरचे और चरखे' स्तम्भ के अंतर्गत् लिखी गई 'मंत्री शरणम् गच्छामि', 'स्वतंत्रता और स्मृति-दोनों गलत', 'पेटियों में बंद साहित्य', 'एक विचित्र भय', 'होली पुरस्कार', 'दीवाली', 'लक्ष्मी और उल्लू', 'आत्महत्याओं की नींव पर खड़ा समाज', 'आओ नकल करें', 'यह दर्ज कर लिया जाए', 'रास्ता बंद है', 'जोड़ा और जड़ता', दाढ़ी की राजनीति', 'लेखक को पुरस्कार', 'जाँच कमेटी बैठाओ और छुट्टी पाओ', 'होली का कालपात्र', 'चोर और ईश्वर की मिलीभगत', 'सौंदर्य कहाँ है', 'सूखा और ऊखा', गणराज्य दिवस परेड और औकात बोध', 'इ' से 'कैसा हिन्दू कितना हिंदू' 'तानाशाही का भय', 'योगाभ्यास और दूरदर्शन', जैसी टिप्पणियों में सर्वेश्वर के संवेदनशील पत्रकार व्यक्तित्व के कई पक्षों के दर्शन होते हैं। इन टिप्पणियों में कहीं तो साहित्यिक और सांस्कृतिक आयोजनों के उद्घाटन पर आत्म-प्रचार के लिए किए जाने वाले छिछले हथकंडों की व्यावसायिक और भेदबुद्धि पर व्यंग्य है तो अन्यत्र राष्ट्रीय चरित्र और राष्ट्र-प्रेम को उद्घाटित करने वाली भाषा के अशुद्ध इस्तेमाल को लेकर गहरी बेचैनी।

एक तरफ बेरोजगारी से जूझने वाले शिक्षित बेरोजगारों के प्रति गहरी सहानुभूति है तो दूसरी ओर व्यवस्था द्वारा की जा रही फिजूलखर्ची पर गहरा रोष। कहीं कलाकार के वर्चस्व को उजागर करने की जागरूकता दिखाई पड़ती है, तो दूसरी तरफ उसकी सामाजिक बेबसी को भी सर्वेश्वर पूरी पक्षधरता के साथ रेखांकित करते हैं। कहीं 'होली' जैसे सांस्कृतिक उत्सव पर निकलने वाली परंपरागत भोंड़ी, अरुचिकर और स्तरहीन उपाधियों को लेकर ग्लानि प्रकट हुई है, तो दूसरी तरफ इनके स्थान पर आस्वादपरक, स्वस्थ और तिलमिला देने वाली टिप्पणियों भी हैं, जिनमें तद्युगीन साहित्य में प्रवेश कर रही व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों को लक्ष्य करते हुए व्यंग्य किया गया है।" इसका एक प्रमाण द्रष्टव्य है: "इस स्तंभकार ने कभी नहीं सोचा था कि हिंदी साहित्य में इतनी मौज-मस्ती है। आचार्य मर्मपाद ने आँखें खोल दीं, बोले 'जानते

हो इतना मस्त साहित्य क्यों है?

क्यों इतनी रंगरंगीली दुनिया है हिंदी की?"

'नहीं आचार्य।'

'इसलिए कि यहाँ व्यक्तिवाद है।'

'व्यक्तिवाद तो बुरी चीज होती है।'

'किसने कहा? बड़ी अच्छी चीज होती है। खूब

फलती है। बड़ी फलवती होती है। हिंदी साहित्य में सिवा व्यक्तिवाद के कुछ नहीं फलता।'

यह स्तंभकार चकरा गया। पूछा-

'आचार्य आप व्यक्तिवाद किसे कहते हैं?'

'जो 'परंपरा' और 'साधना' पर टिका हो।'

'परंपरा क्या है?

'परम् + परा यानी दूसरे की श्रेष्ठ' 'साधना?'

'साघ ना यानी कोई साध न रहे'

'यानी?'

'यानी दूसरे का श्रेष्ठ मुक्त भाव उड़ा लीजिए थोड़ी चतुराई से और दिखाइए यही कि आप निष्कपट हैं, आपको कोई साध नहीं है। फिर आपका व्यक्तिवाद, व्यक्तिवाद होते हुए भी सबके लिए हो जाएगा। जिनका लिया होगा उनका भी और जिनको देना है उनका भी। इसी के कारण हिंदी साहित्य मस्ती में है। परंपरा भी है और साधना भी है।"

इसी प्रकार शिक्षा, धर्म, राजनीति, सामाजिक उत्पीड़न व्यवस्था के दो मुँहेपन और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में घट रही प्रायः सभी ज्वलंत घटनाओं और समस्याओं पर सर्वेश्वर ने पूरी संजीदगी और निष्ठा से लिखा है। 'आओ नकल करें' शीर्षक से उन्होंने देश की सभ्यता और संस्कृति के उद्धारक बने राजनेताओं को वर्तमान दुर्व्यवस्था के लिए उत्तरदायी मानते हुए आड़े हाथों लिया है और बड़ी सशक्त टिप्पणी दी है, "सारा देश ही नकल कर रहा है। आजादी के बाद सिवा नकल के इस देश ने किया क्या है? यहाँ क्या नकल नहीं है? अंग्रेजी शासन की नकल पर ही क्या हम अपना शासन नहीं चला रहे हैं? सारा संविधान, अदालतें, भारतीय दंड संहिता, पुलिस,नौकरशाही सरकारी तंत्र, हमारा पहनावा, रहन-सहन, भाषा, आमोद-प्रमोद, होटल-रेस्त्रां, कैबरे, शिक्षा-पद्धति क्या नहीं है? सारा देश दूसरों की ही नकल पर जिंदा है। सरकार में नकल हो, सभ्यता और संस्कृति में नकल हो तो कोई नहीं बोलता, सब चुप रहते हैं। हम विद्यार्थी नकल करें तो लोग चिल्लाने लगते हैं, अनैतिक कहने लगते हैं

अनैतिक कहने लगते हैं

स्पष्ट है कि "सर्वेश्वर किसी भी अत्यंत दुषित मनोवृत्ति के नगण्य होते हुए भी यदि यह देश की गरिमा को कलंकित करने वाली है तो पूरी व्यापकता येते में उसकी समीक्षा करते हैं। यही कारण है कि इसमें राजनेता, व्यारारी, शिक्षाशास्त्री, भाषाविद, सामाजिक सुधारक प्रायः सभी उनके लक्ष्य बन जाते हैं।

"स्वतंत्रता और स्मृति दोनों गलत" शीर्षक से देश के कर्णधारों की छिछली देशभक्ति और राष्ट्रीयता को उजागर करते हुए सर्वेश्वर का मन बहुत दुखी होता है। लखनऊ में गोमती के तट पर एक शहीद स्मारक के प्रवेश द्वार पर पत्थर में उकीर्ण 'स्वतंत्रता' और 'स्मृति' शब्दों के अशुद्ध लिखे जाने पर सर्वेश्वर अपनी टिप्पणी में कहते हैं- "यह भारतवर्ष में ही हो सकता है, दुनिया में और कहीं नहीं- कि भाषा की इतनी मोटी अशुद्धियों सार्वजनिक स्थानों पर दिखाई दें। हमारे यहीं या दुनिया के और किसी देश में ऐसी अशुद्धि एक दिन भी बर्दाश्त नहीं की जा सकती थी। इस अशुद्धि पर सरकार हिल सकती थी। लोग या तो इस पत्थर का मुँह काता कर देते या खुद इसे निकालकर फेंक देते। प्रदर्शन करते। एक दिन से ज्यादा ऐसी गलती सार्वजनिक स्थल पर ठहर नहीं सकती थी। लेकिन आपका देश सहनशील है। यहाँ सब कुछ सहन कर लिया जाता है-बड़े-से-बड़ा अपमान भी। फिर यह तो अशुद्धि ही है।""

"हमारे देश में प्रायः आत्महत्याओं की सूचनाएँ अखबारों में निकलती रहती हैं किंतु आज के पत्रकार उनके कारणों की तह में जाने का प्रयल बिलकुल नहीं करते। इसी स्तर पर इन तथाकथित सूचनावादी पत्रकारों से सर्वेश्वर की छटपटाहट और आक्रोश दोनों साथ-साथ दिखाई देते हैं। वे अपनी पूरी सामर्थ्य से घटनाओं की तह में जाकर उनके कारणों पर प्रकाश डालने का प्रयल करते हैं।

'आत्महत्याओं की नींव पर खड़ा समाज' शीर्षक से व्यक्त की गई एक टिप्पणी में सर्वेश्वर की इस रचनात्मक समर्पणशीलता और निष्ठा के दर्शन होते हैं। टिप्पणी कुछ इस प्रकार से है, "आत्महत्या चाहे प्रेम में हो, चाहे नौकरी में असंतोष से हो, चाहे छात्र-जीवन के अन्याय और घुटन से हो, किसी भी जीवित समाज के लिए कलंक है। इसे समझना समाज के कर्णधारों के लिए बहुत जरूरी है। जिंदगी से अधिक प्यारी चीजें कोई नहीं होती। यूँ ही कोई अपनी जिंदगी नहीं देना चाहता। अगर कोई जिंदा नहीं रहना चाहता तो क्यों? इसका जवाब समाज को खोजना होगा, क्योंकि इसका जवाब ये लोग हैं जो जिंदा नहीं रहना चाहते, पर जिंदा है क्योंकि मर नहीं सकते। हर आत्महत्या समाज में फैलते सड़ांध की सूचक है। यह सड़ांध मानवीय रिश्तों में हो सकती है, रोजगार में हो सकती है, शिक्षा व्यवस्था में हो सकती है।""

सहानुभूति की व्यापक परिधि : सर्वेश्वर ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित हो रही घटनाओं को भी अपनी पत्रकारिता से सम्पृक्त किया है। "अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं से उनका सीधे सरोकार रहा है। पाकिस्तान में विगत कई वर्षों से जारी तानाशाही के विषय में उनकी टिप्पणी से इसका प्रमाण मिलता है, लोकतंत्र की असफलताएँ तानाशाही की एक भी सफलता से बेहतर हैं। दूसरों के द्वारा घसीटे जाने से अपने लंगड़े पैरों पर चलना कहीं अच्छा है। तानाशाह के भय का निदान एक व्यक्ति के पास नहीं है, जबकि लोकतंत्र में भ्रष्टाचार के भय का निदान एक व्यक्ति के पास हो सकता है। न भी हो, तो यह भय आदमी की आत्मा को मारने का साहस तो नहीं कर सकता।"

"भारतीय राजनीति स्पष्टीकरण कोष" शीर्षक से सर्वेश्वर ने भारतीय राजनीति के छद्म नामों की अर्थवत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाया है:

"लोकतंत्र नेताओं का, नेताओं द्वारा, नेताओं के लिए।

विचारधारा-सौंठ-गाँठ ।

देशहित-निजी स्वार्थ ।

सांप्रदायिकता-अपने गुंडों की हिफाजत।

प्रगति-दल-बदल ।

नेता-स्वार्थी-पदलोलुप ।

कार्यकर्ता-शोषित ।

अल्पसंख्यक-घास, जिसे जितना रौदिए, काटिए, उतनी ही पनपती है।" शासन-व्यवस्था के आंतरिक दुश्चक्रों का पर्दाफास करते हुए सर्वेश्वर ने भाषा और धर्म की राजनीति पर अत्यंत तीखे कटाक्ष किए हैं- "सच तो यह है कि भाषा और धर्म की लड़ाई समाज के कुछ गिने-चुने लोगों के लिए उनके अस्तित्व की लड़ाई होती है। यदि वह यह न करें तो क्या करें।" उनकी चिंता वस्तुतः भाषा या धर्म की नहीं होती, केवल अपनी दुकान खुला रखने की होती है। भाषा या धर्म की बिक्री अब उतनी नहीं रही, फिर दुकान तो रखने का नाम ही दुकान चलना है। एकाच ग्राहक तो रास्ता भूल ही जाते हैं।" सर्वेश्वर ने अपनी पत्रकारिता को विस्तृत आयाम देने की कोशिश की है। वस्तुतः उनकी पत्रकारिता में आम आदमी के दुख-दर्द से सीधा सरोकार स्थापित किया गया है।

करुणाशील और आक्रामक तेवर "सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की पत्रकारिता मूलतः करुणा से भरी हुई दुखी, निर्बल और सताए हुए लोगों की पक्षधर थी। वे जब चोट करते थे, तो एकदम फौलादी चोट का एहसास होता था। इस तरह के असंख्य

प्रकरण हैं जिनमें सर्वेश्वर की यह निर्भीक पक्षधरता साफ दीखती है। सर्वेश्वर की कलम ने 'व्यक्तिगत को' 'इतिहास बनाने की कोशिश की और दतिरावर की व्यक्तिगत' होकर रह जाने की, हर की जाने वाली कोशिश पर बारम्बार प्रलचित लगाए। सर्वेश्वर कलाकार के वर्चस्व और सामाजिक बेबसी को उजागर करने में कभी हल्के नहीं रहे-बड़ी मार्मिक चोट करते थे।"

सर्वेश्वर ने वेगम अख्तर की मौत पर लिखा था, "यह समाज संस्कृति-उपासकों का नहीं है। संस्कृति के नाम पर सब झूठी दुहाइयों देते हैं। मौका पड़ने पर सत्ता के ही पीछे भागते हैं। कलाकार की यात्रा अकेली रहती है। यह स्तंभकार मौत को गौरवान्वित करने का हिमायती नहीं है, लेकिन उस श्रेणीबद्धता के विरुद्ध है, जहाँ कुछ की मौत को गौरव दिया जाता हो बाकी को उपेक्षित किया जाता हो।

छोटे-बड़े, पुरस्कारों के तंत्र में इतना छद्म है कि न निर्णायकों के नाम घोषित किए जाते हैं और न उस मूल्यांकन को विशद रूप से समाज के सामने रखा जाता है, जिसके आधार पर कोई कृति पुरस्कृत की गई हो। सब कुछ 'राजा की खुशी' जैसे अंदाज में किया जाता है। पुरस्कृत होने पर साहित्यकार बेचारा पुरस्कृत समारोहों में दौड़ा-दौड़ा जाता है और लोकतंत्र के नाम पर किसी-न-किसी के दरबार में आदाब बजाता है। बहुत से साहित्यकार ऐसे मिलेंगे जो पुरस्कार प्रदाता प्रतिष्ठानों के खिलाफ रहते हैं लेकिन जब उन्हें पुरस्कार मिलता है तो पैसे की जरूरत के नाम पर से लेते हैं।"

इसे नियति की विडम्बना कहें या सर्वेश्वर के भाग्य को दोष दें कि उन्हें मरणोपरांत वर्ष 1984 में साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला। पुरस्कारों से संबंधित राजनीति पर उनकी टिप्पणी अत्यंत धारदार है- "पुरस्कार स्वीकार और अस्वीकार करना लेखक की क्रांतिकारिता की कसौटी नहीं है। यदि रचना पुरस्कार के लिए नहीं लिखी गई है, तो उसका पुरस्कृत होना अपमानजनक नहीं है। लेकिन वे लेखक अवश्य क्षम्य नहीं हैं, जो क्रांतिकारी का तेवर अपनाते हैं, पुरस्कार प्रतिष्ठानों को गाली देते हैं, पर उसके लिए लार टपकाते हैं और मिलने पर अहोभाग्य मान स्वीकार कर लेते हैं।"

'जोड़ा और जड़ता' शीर्षक से प्रकाशित एक लघु लेख में आम आदमी की पीड़ा को उन्होंने अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित करते हुए लिखा है कि- "सर्दी बढ़ी नहीं और शीतलहर आई नहीं कि अखबारों में ठंड से हुई मौतों की खबरें आने लगती हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे गरमी में लू से और बरसात में बाढ़ से मरने वालों की खबरें। इन खबरों में अक्सर संख्या लिख देना ही पर्याप्त समझा जाता है-'व्यक्ति' तक लिखने की जरूरत नहीं समझी जाती। आदमी और उसकी मौत के प्रति उनकी यह

उदासीनता बेहद तकलीफदेह है। शीतलहर, का उससे भी अधिक है, पर क्या उदासीचतानता की लहर का कोई जवाब है, जो उससे भी अधिक भयंकर रूप है उस आरफ छाई हुई है और हर मौत की आँधी में पेड़ टूटने की तरह भी नहीं देख पाती? यह नहीं समझ पाती कि सर्दी से मरने का मतलब है, गरीबी से मरना, खाना, पावती कपड़ा, घर न मिलने से मरना। "क्या हम यह मानने को तैयार हैं कि मौत सदी से नहीं होती, उन तमाम वस्तुओं के अभाव से होती है, जो जिंदा रहने के लिए जरूरी हैं। आदमी फसल नहीं है जिसे पाला मार जाए।"

संपूर्ण परिवेश के प्रति सजगता : अपने संपूर्ण परिवेश पर सर्वेश्वर सजग दृष्टि रखते थे। छोटी-से-छोटी खबरों की तह में जाकर वे उनका विश्लेषण करने लगते

...दवाइयों में मिलावट और वह भी पातक मिलावट की सजा प्राणदंड क्यों नहीं हैं? यह सजा तुरंत क्यों नहीं लागू की जाती? पर सरकार और जनता की उदासीनता से तो समझ में नहीं आता कि अस्पतालों में सुई होने को रोएँ या न होने को रोएँ।""

मिलावट करने वाले व्यापारियों के पकड़े जाने की खबर पर वे टिप्पणी करते हैं कि मिलावट के अमानुषिक कृत्य को या तो कानून को कारगर बनाकर रोको अन्यथा जनता को छूट दो। भ्रष्टाचार और मिलावट के खिलाफ समाएँ होती हैं, वक्तव्य छपते हैं, जुलूस निकलते हैं, पर किसी भी शहर में सौ आदमियों की भी जमात नहीं है, जो इन मिलावट करने वालों को कानूनी न सही सामाजिक सजा दे।

क्रांतिकारी लेखकों के लेखन पर लगे हुए किसी भी तरह के प्रतिबंध के खिलाफ सर्वेश्वर की कलम बराबर जेहाद बोती रहती थी। वे जिन राजनीतिक विचारधाराओं को नापसंद भी करते थे, तब भी उनकी आजिदी पर, उनकी अभिव्यक्ति पर किसी भी तरह की पाबंदी उन्हें पसंद न थी। वे सर्वेश्वर उनकी भी खुलकर वकालत करते। यह एक बड़े और उदार मानस से ही संभव था। "सर्वेश्वर नारी की स्वतंत्रता और उसकी गरिमा को अक्षुण्ण बनाए रखने की लड़ाई भी लड़ते रहते थे। वह चाहे अश्लील पोस्टरों के बहाने हो, चाहे गंदी कामुक किताबों पर चोट करते हुए और चाहें वेश्यावृत्ति अपनाने को मजबूर हुई लड़कियों के पक्ष में लिखते हुए।""

'लिजलिजी मानवता' शीर्षक से वियतनाम के संदर्भ में स्त्री की बुनियादी मर्यादा का प्रश्न उठाते हुए सर्वेश्वर लिखते हैं अब अगर अपने जले हुए वस्त्र उतारकर दक्षिण वियतनाम की एक बालिका बच भी गई, तो वे कौन से मूल्य हैं, जिनके लिए उसे जीवित रहना चाहिए? क्या वह एक ऐसी नारी बन सकेगी, जो

स्वाभिमानपूर्वक अपनी धरती पर कदम रखती है-स्त्री की बुनियादी मर्यादा को अकुण्ण रख सकती है?

एक तरफ "सर्वेश्वर का बहुत गहरा लगाव अपने समय के घटियापन के आलों से अपने पाठकों को बराबर आगाह करते रहने में द्या-दूसरी तरफ वे दिनमान' में साहित्य के अहम् मुद्दों, आंदोलनों, महत्त्वपूर्ण किताबों पर बराबर एड कर लिखते थे। तटस्थता और लेखकीय आजादी की बात उनके जेहन में परमत' को गोष्ठियों के जरिए घुल-मिल गई थी। वे अपनी कलम का इस्तेमाल इसी आजादी के पक्ष में करते रहे। संगीत, नृत्य और रंगमंच का जैसा स्तम्भ सर्वेश्वर के द्वारा 'दिनमान' में नियमित रूप से चलाया गया, वह अन्य पत्र-पत्रिकाओं के लिए एक अनुकरणीय आदर्श बन गया। इन कलाओं के साथ हिंदी के पाठकों का सीधा सरोकार बनाने के लिए सर्वेश्वर ने एक नई भाषा गढ़ी और उसका प्रचार किया। यह भाषा उस कलम की तकनीकी भाषा न थी, जो पाठक, कलाकार और स्नोलाकार के बीच एक नए संबंध सेतु की स्थापना करती थी। सर्वेश्वर अन्य रेडकों का भाषा में संपादन करते हुए इसी तेवर को उभार देते थे। 1982 में सर्वेश्वर को पराग' (बच्चों की पत्रिका) का भार दिया गया। 8-10 माह के अपने संपादन में सर्वेश्वर ने 'पराग' को जिस नए रूप में उभारकर बच्चों की रुचि का जबर्दस्त परिमार्जन किया, वह आश्चर्यजनक था। उनके कितने संपादकीय 'कविता' में ही निखे गए, जिन्हें बच्चे दोहराया करते। कितने लोगों से सर्वेश्वर ने 'पराग' में निखवाया और बच्चों के लिए अनूठी पाठ्य सामग्री एकत्र की। सर्वेश्वर बच्चों को मी अन्याय के लिए लड़ने और सही बात के लिए रीढ़ सीधी करके खड़े होने के लिए तलकारते रहे- 'पराग' के वे दस-बारह अंक इसके प्रमाण है।"

उनके अनन्य मित्र भी केशवचंद्र वर्मा उनके पत्रकार व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि, "सर्वेश्वर को कभी खरीदा न जा सकता। वे बिकाऊ मात कभी नहीं बने। दिल्ली में रहकर भी वे दिल्ली के कभी नहीं हो पाए।" दिल्ली में उनके चारों ओर सुख-सुविधा, पैसा, यश, विदेश यात्राएँ, इनाम-इकराम सभी का जात बिठा हुआ था। शासन से अनेक प्रकार की मान्यताएँ प्राप्त कलाकारों और नाहित्यकारों का हुजूम सर्वेश्वर को चारों तरफ से घेरता था। सर्वेश्वर उन सबके बीच सोना तानकर रहते थे और सिर्फ कलम पर ही अपने पूरे व्यक्तित्व को दाँव पर लगाते थे। सर्वेश्वर ने एक बार कहा था- अगर मुझे यह अधिकार मिल जाए कि में जिसे गलत समझता हूँ उसे एक बेंत लेकर जब चाहूँ पीट सकता हूँ, तो में लिखना बंद कर दूंगा। लेकिन मेरे पास यह अधिकार नहीं है, इसलिए मुझे लिखना ही पड़ता है. और में लिखता ही रहूँगा।"

इसी क्रम में आगे वे अत्यंत दुखी मन से यह भी कहते हैं कि- "हिंदी का पत्रकार अब भी सर्वेश्वर को अपनी बिरादरी का आदमी नहीं समझता उससे कुछ भी सीखने को तैयार नहीं है।""

सर्वेश्वर के पत्रकार व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए इस बात की महता का ध्यान में रखना होगा कि आज जिस प्रकार की निम्नस्तरीय पत्रकारिता से लोगों को ऊब महसूस हो रही है, ऐसे धूमिल वातावरण में समकालीन पत्रकारिता, सर्वेश्वर से बहुत कुछ सीख ले सकती है। "निश्चय ही सर्वेश्वर युग मानस की निर्मिति एवं उसके प्रशिक्षण का दायित्व लेकर चलने वाले युग चरण पत्रकार को भूमिका का निर्वाह करते रहे। उनका संपूर्ण लेखन जिस मानवीयता का पक्षधर था. वह किसी खास विचारधारा या सिद्धांत या वर्ग विशेष मात्र का ही नहीं था, वरन अन्याय और शोषण के विरुद्ध उठ खड़े होने वाले उस हर मानव का भी, जिसमें जीवन की ललक हो और एक सार्थक और अभिप्राय पूर्ण सोद्देश्य जीवन जीने की आकांक्षा।

इसी उद्देश्य के लिए सर्वेश्वर आजीवन संघर्षरत रहे। आजकल के पत्रकारों को निश्चय ही उनके लेखन से प्रेरणा प्राप्त कर आम आदमी की इच्छा-आकांक्षा को उसी तेवर और शैली में प्रस्तुत करना चाहिए, जिससे पत्रकारिता के उद्देश्यों में सार्थक सफलता हस्तगत हो सके, साथ ही उसके मानदंड भी पूर्ण हो सकें।

संदर्भ

1. सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 250
2. आधुनिक पत्रकार कला रामकृष्ण रघुनाथ खडितकर, पृ. 2
3. यही, पृ. 2
4. सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्य डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 25
5. वही, पृ. 253
6. संपादक पराडकर: सं. लक्ष्मी शंकर व्यास, पृ. 121
7. लोक संपर्क: राजेंद्र, पृ. 290
8. सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 256
9. दिग्दर्शन पत्र, प्रथम अंक
10. वही, प्रथम अंक
11. सर्वेश्वर : व्यक्तिगत और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 257
12. माध्यम (वर्ष 1, अंक 1) सं. बाल कृष्ण राव, पृ. 12
13. सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 259
14. माध्यम (वर्ष 1, अंक 1): सं. बाल कृष्णराव, पृ. 15
15. सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 261

16 आधुनिक पत्रकारिता डा. अर्जुन तिवारी, पृ. 21
17 सर्वेश्वर व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 263
18 पुक्ति प्रवेशांक जुलाई 1984, पृ. 35
19 वही, पृ. 35
20 सर्वेश्वर व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 265
21 मुक्ति प्रवेशांक जुलाई 1984, पृ. 36
22 वही, पृ. 36
23 सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 267
24 दिनमान: 11-17 मार्च, 1979 पृ. 10
25 वही, 8-19 अप्रैल 1979, पृ. 9
26 सर्वेश्वर व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 200
27 दिनमान: 10-16 अगस्त 1980, पृ. 13
28 सर्वेश्वर व्यक्तित्व और कृतित्य डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पू. 271
29 दिनमान 27 फरवरी, 4 मार्च, 1980, पृ. 11
30 वही, 11 नवम्बर, 1979, पृ. 97
31 वही, 9-15 दिसम्बर, 1979, पृ. 9
32 वही, 15-21 मार्च, 1981, पृ. 9
33 सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 273
34 दिनमान 17 नवम्बर, 1979, पृ. 74
35 मुक्ति प्रवेशांक जुलाई, 1984, पृ. 37
36 दिनमान: 24 नवम्बर, 1979, पृ. 13
37 वही, 6 जनवरी, 1974, पृ. 11
38 वही, 25 अप्रैल, 1974, पृ. 9
39 वही, पृ. 15
40 सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 27
41 दिनमान 25 जून, 1972, पृ. 28
42 सर्वेश्वर : व्यक्तित्व और कृतित्य डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 277
43 मुक्ति प्रवेशांक: जुलाई 1984, पृ. 39
44 यही, पृ. 39
45 सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्य डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 279

अध्याय-7

सर्वेश्वर : समग्र मूल्यांकन

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न

हिंदी साहित्य में सर्वेश्वर को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। सर्वेश्वर का साहित्य उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का परिचायक है। काव्यगत मौलिकता के कारण नई कविता के कवियों में सर्वेश्वर का विशिष्ट महत्त्व है। " 'सप्तक' के कवियों में मुक्तिबोध मौलिक विम्बों और एक भिन्न मनोजगत् के कारण हमारे लिए दुर्योध कवि बने तथा शमशेर बहादुर सिंह में एक बारीक बुनावट और मन के अंदर तक जाने वाली चित्रात्मक संवेदना की सूक्ष्मता है, वह बात सर्वेश्वर के साथ नहीं है सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जो कवि रूप हमारे सामने आता है वह एक सीधे, स्पष्ट और निर्भीक कवि का है। ऐसा इसीलिए कि उन्होंने नई और प्रगतिशील कविताओं के 'तंत्र' और कौशल को महत्त्व नहीं दिया।""

सर्वेश्वर इस बात से परेशान थे कि "जीवन के व्यापक संघर्षों को भूलकर हिंदी का कवि बाजीगरी के नशे में डूबा हुआ है। हिंदी के आज के प्रतिष्ठित कवियों में एक भी ऐसा होता, जिसकी कविताओं में कवि का एक व्यापक जीवन-दर्शन मिलता है।" व्यापक जीवन-दर्शन का अर्थ सर्वेश्वर की दृष्टि में विशाल उपेक्षित जनमानस के प्रति समर्पित होकर उसकी वास्तविकताओं से एकाकार होना है।

सर्वेश्वर की लोक-दृष्टि

"नई कविता और प्रगतिशील कविता का आंदोलन वास्तव में मध्यवर्गीय- कविता परंपरा से निकला हुआ था, इसलिए उनमें मध्यवर्गीय संस्कारों का स्पष्ट प्रभाव था। उन्हीं दिनों देश की वस्तुस्थिति यह थी कि झारखंड में जनजातियों व

आदिवासियों का विद्रोह, नौसैनिकों का विद्रोह, तेलंगाना में किसानों का विद्रोह, स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों का गठन और उसके आपसी दंड, छात्रों और किसानों के छोटे-मोटे आंदोलन और सरकारी चरित्र आदि उभरकर सामने आ चुके थे। ये तमाम जनोन्मुख आंदोलन नागरिक स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक माँगों के लिए शुरू हो चुके थे, फिर भी हिंदी के प्रगतिशील कवि-कविता के छंद, भाषा, बिम्ब आदि को सहेजकर साहित्य की प्रगतिशीलता का नारा बुलंद कर रहे थे। सर्वेश्वर के लिए यह स्थिति क्षोभ की थी। ये जब तत्कालीन कवियों के जीवन-दर्शन की बात करते हैं, तो इन्हीं परिस्थितियों को सामने रखते हैं।""

वस्तुतः वे साहित्य को सांस्कृतिक-कर्म के रूप में अंगीकार करने के इच्छुक हैं। सांस्कृतिक कार्य के रूप में साहित्य को माध्यम बनाकर सर्वेश्वर हिंदी-साहित्य- जगत् में प्रवेश करते हैं। सर्वेश्वर ने इस घोषणा के साथ सांस्कृतिक क्षेत्र में कविता के माध्यम से प्रवेश किया- "में कविता न लिखता, यदि अधिकतर प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने नकली जीवन छोड़कर साहित्यकार का अनुभवप्रवण लोकजनीन वास्तविक जीवन अपनाया होता। अपनी शक्ति ऐसा विराट् साहित्य लिखने में लगाई होती, जिसे हम गौरवपूर्वक विश्व के सम्मुख रख सकते।" यहाँ, विश्व से तात्पर्य उनके लिए उस दुनिया से था, जिसमें गरीय, मेहनतकश, लोकतांत्रिक मूल्यों और नागरिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले आम लोगों का बाहुल्य हो, जो वास्तव में दुनिया के संचालक हैं और जिनके श्रम से दुनिया का चक्का घूमता है।

"वे इस जीवन की वास्तविकता से गहरे स्तरों पर जुड़े हुए थे। क्योंकि गाँव, भूख, गरीबी, आर्थिक संघर्ष, मध्यवर्गीय पारिवारिक विडम्बनाओं व अंतर्विरोधों से गुजरते हुए क्लर्की और अध्यापन का जीवन बिताकर वे कविता और पत्रकारिता के विराट् महानगर में पहुँचे थे। उन्होंने 'प्रयोगवादी' और 'नई कविता, की धाराओं के बीच से होते हुए वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया, जहाँ वास्तविक 'लोकजनीन जीवन टिका हुआ है और अपने बेहतर जीवन के लिए सकारात्मक संघर्ष चला रहा है। यही कारण है कि सर्वेश्वर आरंभ में जिन मध्यवर्गीय भावनाओं जैसे प्रेम, वात्सल्य, करुणा, ऊब, प्रियजनों के लिए आहत होना, वर्तमान तंत्र पर व्यंग्य, सहानुभूति आदि की कविता का मूल्य और चिंता समझ कर लिखते रहे, वे धीरे-धीरे बदलती गई। जीवन का यथार्थ अनुभव आने से उनकी कविता की चिंताएँ बदलती गई और व्यापक लोकजनीन जीवन और मानवता की बेहतरी का आशावाद उनकी कविताओं में आया।" यही आशावाद उनकी रचनाओं की विशिष्टता रही है।

विकासजीत रचना-दृष्टि

सवर की रवनात्मक विकास यात्रा के संबंध में डॉ. रविंद्र उपाध्याय का मत केकि सर्वेश्वर के कवि-जीवन में निरंतर विकास का क्रम लक्षित होता है, जो क्रमशः यथार्थ के जटिल धरातल पर उतरते हुए अधिक शक्ति और सामर्थ्य का परिचय देता है। सर्वेश्वर को 'प्रगतिशील' और 'नई कविता' की उपज मानते हुए भी हमें इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि उनकी भाषा, उनका कय्य, उनकी कविता का संसार इन धाराओं के कवियों से सर्वया भिन्न है। भाषा में रहस्य पैदा करने की उन्होंने कभी कोशिश नहीं की। सरलतम भाषा को किस प्रकार कविता का माध्यम होने का गौरव प्राप्त हो सकता है, इसके लिए वे हमेशा सचेष्ट रहे। नितांत व्यक्तिगत संवेदना से लेकर सामाजिक और राजनीतिक स्तरों पर जिन मूल्यों को उन्होंने उठाया है, उनके लिए भाषा, संकट का कारण कभी नहीं बनी। सर्वेश्वर 'नई कविता' के नए प्रकार के बिम्बों से उत्पन्न रहस्यमयता द्वारा कविता को अबूझ पहेली बनाने के प्रयास में तरह-तरह के व्यक्तिगत प्रयासों के कारण कलावाद के एक नए अंधेरे में न जाकर, विम्ब और कविता की दुनिया को आम आदमी के निकट से आए। उन्होंने कविता को इन दलदलों से निकालने का प्रयत्न किया। उनके इस प्रयास में ही उनके विकास के बीज छिपे थे। अपने 40 वर्षों के लंबे रचनाकाल में इसीलिए वे प्रगति और परिवर्तन की राह पर रहे। अंततः उन्होंने समझा कि कोई सांस्कृतिकर्मी कुछ भी नया नहीं करता। वह जनता के व्यापक व न्यायपूर्ण संघयों से सीखकर उसे एक दिशा के रूप में जनता के सामने पेश कर देता है। सर्वेश्वर के पूरे काव्य-संसार पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि वे निरंतर एक सांस्कृतिककर्मी का दायित्व अनुभव करते रहे और राजनीतिक, सामाजिक बदलाव से अपने को जोड़ते हुए कविता की सामाजिक भूमिका के प्रति आग्रहशील रहे।""

सर्वेश्वर दिन-प्रतिदिन परिवर्तित हो रहे सामाजिक यथार्थ यानी वर्तमान शासकों की शासक-संस्कृति पर ही नहीं, अपितु उसके दबाव और शोषण के साथ-साथ जनता के व्यापक प्रतिरोध पर दृष्टि रखते थे। व्यवस्था परिवर्तन में जनता की सक्रिय हिस्सेदारी की आवश्यकता पर सदैव उनका जोर था। यही चेतना उनके संपूर्ण लेखन का सार है। इसी को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि- "अन्याय और यातना की सीमा जब पार हो जाती है तो बेजान में ही सबसे पहले जान आती है।"

एक सांस्कृतिक-कर्मी की क्रांति के क्षेत्र में क्या भूमिका होनी चाहिए इसे वे भली प्रकार जानते थे। यही कारण था कि वे अपने कवि-कर्म और सामाजिक भूमिकाओं-दोनों ही माध्यमों से संघर्ष कर सके। वे स्वयं स्वीकारते हैं- "हम तो जमीन ही तैयार कर पाएँगे क्रांति-बीज बोने कुछ बिरले ही आएँगे। हरा-भरा वही

करेंगे श्रम को सिलसिला मिलेगा आगे क्रम को।"

सर्वेश्वर की संवेदनागत जनपक्षबरता

आधुनिक काल में सर्वेश्वर यदि प्रासंगिक, आवश्यक और महत्वपूर्ण कवि बने हुए हैं तो उसका कारण यही है कि उन्होंने हिंदी-कवियों के लिए एक दिशा और ठोस भूमि की आधारशिला निर्मित की है। इस संबंध में डॉ. रविंद्र उपाध्याय लिखते है: "सर्वेश्वर ने अपनी गलतियों से सीखते हुए विशाल जनसमूह के न्यायपूर्ण कार्यों को देखते हुए और सांस्कृतिक कर्म की आवश्यक भूमिका समझते हुए, वे अपने को जहाँ तक ले आए, वह वर्तमान कविता की एक उपलब्धि है। उन्होंने तत्कालीन जनांदोलनों से प्रेरणा लेकर शोषण और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष किया। यही कारण है कि जनपक्षधरता उनके काव्य में सिद्धांतगत ही नहीं है, संवेदनागत भी है।

सामान्य से सामान्य मनुष्य की चिताएँ और आकांक्षाएँ उनकी संवेदना में धुली-मिली हैं। उपेक्षित और पीड़ित वर्ग के प्रति जो सहानुभूति उनकी कविताओं में दिखाई देती है, वह मात्र नारे के रूप में नहीं है, बल्कि उनकी चेतना से तादात्म्य स्थापित करते हुए व्यक्त हुई है। गरीब, मजदूर, किसान, बच्चे, बेरोजगार आदि अनेक उपेक्षित वर्गों की अनुभूतियाँ उनकी संवेदना का अंग बन गई हैं। भले ही वे महान कवियों की परंपरा में न आते हों, किंतु यह बात धीरे-धीरे सिद्ध होगी कि आम दुनिया की 'महान चिंताएँ उनके संपूर्ण रचना-संसार का अंग बनकर व्यक्त हुई हैं।"

सर्वेश्वर का कवि-रूप हमारे समक्ष इन्हीं रूपों में आज भी उतना ही प्रासंगिक है और जब तक ये स्थितियों दूर नहीं हो जातीं, तब तक बना रहेगा।

कथाकार के रूप में

किसी भी साहित्यकार के कथाकार व्यक्तित्व का समग्र मूल्यांकन तभी हो सकता है, जब उसकी कहानियों और उपन्यासों को एक साथ विश्लेषित करने का सार्थक प्रयास किया जाए- "सर्वेश्वर सबसे पहले एक कहानीकार के रूप में ही साहित्य-जगत् में आए और बाद में कविताएँ नाटक और पत्रकारिता-लेखन के क्षेत्र में कार्य किया। आलोचकों और साहित्य के इतिहासकारों ने उनकी कहानियों की कोई विशेष चर्चा नहीं की। उनके कथा-साहित्य का अध्ययन करते हुए कई महत्त्वपूर्ण बातें प्रकाश में आईं। एक तथ्य तो यही है कि उनकी कविताओं का जो स्वर है, उसमें उनका निरंतर विकास परिलक्षित होता है। उनकी कविताएँ मनुष्य के वर्ग, चरित्र और जीवन के वस्तुगत यथार्थ को समझने में हमारी सहायता करती हैं, किंतु उनकी कहानियों से इस तरह की सहायता हमें नहीं मिलती। मनुष्य को केंद्र

में रखकर उन्होंने जो कहानियों लिखीं, उनमें ही मनुष्य को बिल्कुल अस्तित्वहीन करके दिखाने का प्रयल किया गया। उसका लघु रूप वह भी मुहावरों की शक्ल में यहाँ विद्यमान दीखता है, जो अपने गरिमामय अस्तित्व के लिए कहीं पिस रहा होता है, कहीं छटपटा रहा, तो कहीं रेंगता दीख जाता है। सब मिलकर उसकी स्थिति बड़ी दयनीय और निरीह दिखाई पड़ती है। उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास वहाँ नहीं दीखता। जिसके लिए आज चारों तरफ संघर्ष छिड़ा है। दूसरा तथ्य यह है कि सर्वेश्वर ने जिस मनुष्यता को अपनी कहानियों का विषय बनाया और उसे वहाँ अधूरा छोड़ा, उसका विकास सन् 70 के बाद की कविताओं में दिखाई पड़ता है। यहाँ वे संपूर्ण सामाजिक अंतर्विरोधों को उजागर करने में नहीं चूकते। वहाँ उनकी भाषा, शिल्प और मुहावरे बदल जाते हैं। उसमें एक ऐसे मनुष्य की परिकल्पना होती है, जो जीवन में भी है। जो शोषण का शिकार है, जगह-जगह हारता है, टूटता है, फिर भी संघर्ष से पीछे नहीं हटता।

सर्वेश्वर ने अपने रचनात्मक विकास-क्रम में इन सामाजिक अंतर्विरोधों को समझा था और उनके इस विकास-क्रम को हम उनकी कविताओं में देख भी सकते हैं किंतु एक कहानीकार के रूप में उनकी पकड़ बिलकुल 'अकहानी आंदोलन' से प्रभावित दिखाई पड़ती है, जो उन दिनों हिंदी साहित्य में पाश्चात्य प्रभाव से फैले प्रदूषण का ही परिणाम था। अनावश्यक कुंठा और संतोष में डूबी हुई स्थितियाँ मनुष्य को प्रबल दिखाई देती थीं, यानी जीवन की समस्याएँ और उसके निदान के उपाय का सभी कारण ही असंतुलित होता दिखाई पड़ता था। यह सब होते हुए भी एक कहानी-लेखक के रूप में जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात सर्वेश्वर में दिखाई देती है, वह यह कि उन्होंने मनुष्य को समग्र रूप में चित्रित करने की चेष्टा की है। भले ही उनकी कविताओं का मानव संघर्षशील दिखाई देता हो, किंतु उनकी कहानियों का मनुष्य भी उस संघर्ष को जीवित रखने के लिए उन्हें प्रेरणा और सामर्थ्य देता है। जो स्थिति उनकी कहानियों की है, लगभग उसी रूप में उनके दो उपन्यास भी हैं। अपने उपन्यासों में उन्होंने स्थिति और आकांक्षा, यथार्थ और आदर्श, सत्य और स्वप्न, भीतर और बाहर, शरीर और आत्मा के द्वैत को उभारने की पूरी कोशिश की है। उनके उपन्यासों में जो मनुष्य केंद्र में है, उसमें मध्य वर्ग के उन लोगों का समावेश है, जो शीघ्र ही संपन्न होकर सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहते हैं।" वस्तुतः मध्यवर्ग की इच्छाओं-आकांक्षाओं का यथार्थ चित्रण ही उनका मूल प्रतिपाद्य रहा है।

नाटककार के रूप में

सर्वेश्वर को हिंदी साहित्य में विशेष स्थान अपने नाटकों के माध्यम से प्राप्त

हुआ है। उनके नाटकों के संदर्भ में यह स्वीकार करना पड़ता है कि हिंदी रंगमंच के लिए भरतेंदु के बाद सर्वेश्वर इकलौते नाटककार हैं, जो जनचेतना से सीधा सरोकार रखने वाले नाटकों की रचना करते हैं। अपने नाटकों को पुनः लोकजीवन, उसकी समस्याओं और लोकभाषा से जोड़ने का ऐतिहासिक कार्य उन्होंने किया। ये नाटक को जन-संपर्क का सशक्त माध्यम बनाने हेतु प्रयासरत रहे। "अभिजात्य और पश्चिमी प्रभावों से आयातित रंगमंच के समानांतर उन्होंने हिंदी रंगमंच को अपनी जातीय पहचान बनाने के लिए प्रयत्न किया। उन्होंने न केवल शिल्प के स्तर पर कथ्य के अनुरूप लोक-नाट्य-रूपों का प्रयोग किया, बल्कि उनमें प्रयुक्त गीतों को एक नया संस्कार देने के साथ-साथ उसे अधिक लचीला बनाते हुए लोकजीवन के अत्यंत निकट लाने का प्रयत्न भी किया।

एक संदर्भ से दूसरे संदर्भ पर सहसा छलांग लगा जाना, जटिल परिस्थितियों का सरलीकरण कर देना, स्थितियों में अतिरंजना ले आना, इन दोषों से सर्वेश्वर ने बराबर परहेज किया है। भावावेश के क्षणों में मात्र सम्भाषण तक सीमित रह जाना, ययार्य के रूपांतरण से कतरा जाना तथा कलाविहीन जनवाद का फतवा दे बैठने जैसी स्थितियों से भी सर्वेश्वर के नाटक सर्वया मुक्त हैं। सर्वेश्वर एक ऐसे नाटककार के रूप में हमारे सामने आते हैं, जो इस बात का पूरा ध्यान देकर नाटक लिखते हैं कि उन नाटकों को रंगमंच पर भी देखा जा सके।" सर्वेश्वर के नाटकों में आम आदमी की त्रासद स्थिति, उसकी छटपटाहट, परिस्थितियों के द्वंद्व से उपजी पीड़ा, विवशता, संत्रास, घुटन, पराजय-बोध और इनका तीव्र विरोध मुख्य रूप से चित्रित हुआ है।

अभिनेयता और संप्रेषणीयता पर सर्वेश्वर का आग्रह : सर्वेश्वर के नाटककार व्यक्तित्व का सबसे सशक्त पहलू यह रहा कि वे नाटक में उसकी अभिनेयता पर तो विशेष ध्यान देते ही थे, साथ ही साथ इस बात का भी भरसक प्रयास वे करते थे कि उनकी बातें अति सामान्य और साधारण व्यक्ति भी समझा सकें। लोकधुनों, लोकगीतों और लोकजीवन के बहुआयामी विस्तार से संबद्ध मुहावरों का खुला प्रयोग इसी कारण उन्होंने अपने नाटकों में किया। सामान्य जनता तक नाटक को पहुँचाने की रचनात्मक कोशिश का परिणाम एक सफल नाटककार के रूप में उनकी परिणति है। उनके द्वारा लिखित 'बकरी', 'लड़ाई' और 'अब गरीबी हटाओ' जैसी उनकी नाट्य कृतियों हिंदी नाट्य परंपरा में विशिष्ट पहचान बना चुकी हैं। सामान्य से लेकर बौद्धिक वर्ग तक को अत्यंत सहज रूप से प्रभावित करने की जो क्षमता उनके नाटकों में मिलती है, वह बहुत कम नाटककारों में देखने को मिलती है।

सर्वेश्वर को एक सत्य बराबर व्यथित करता था और वह सत्य यह था, कि भारत में अच्छे स्तर के बाल-साहित्य का अभाव था। इस अभाव की पूर्ति हेतु उन्होंने

बाल-नाटकों की रचना की। उनके कुछ नाटकों की रचना बच्चों को ध्यान में रखकर की गई थी। जो बाहक उन्होंने बच्चों के लिए लिखे, उनमें उनकी अभिरुचि और बौद्धिक क्षमता को सार्थक दिशा देने का प्रयास हुआ है। इतना ही नहीं, उन्होंने बालकों को राजनीतिक और सामाजिक फलक पर चित्रित कर राष्ट्र के निवनिर्माण में उनके सक्रिय योगदान पर बल दिया। सर्वेश्वर द्वारा लिखित ये बाल नाटक बच्चों के लिए उनकी अद्‌भुत अविस्मरणीय देन है।

समीक्षक के रूप में

सर्वेश्वर का समीक्षा-रूप-परिचय-'दिनमान' पत्रिका के 'कला', 'साहित्य', 'नृत्य' और 'नाट्य समीक्षा' जैसे स्तम्भों की टिप्पणियों की समीक्षाओं और रिपोटों से मिलता है। "इनमें विभिन्न कलाओं के प्रति उनका अनुराग, उनके अंतर्संबंध का ज्ञान और कलाओं के व्यक्तिगत कौशल तथा योगदान की चर्चा प्रमुख रूप से की गई है। कृति के काव्यगत-सौंदर्य को उद्घाटित करने में सर्वेश्वर के समीक्षक व्यक्तित्व को विस्मृत नहीं किया जा सकता। उपन्यासों, कहानियों और कविताओं की उन्होंने जो समीक्षाएँ लिखी हैं, वे अपनी गहरी आस्वादधर्मिता के कारण अपनी एक अलग पहचान बनाती हैं। उनका समीक्षक रूप कृति की भाषा, भाव और विचारों के संगुफन को उद्घाटित करने में पूरी तरह सक्षम है। समस्याओं को समसामयिक परिदृश्य में देखने का प्रयत्न करना, उनका विवेचन, विश्लेषण और यथोचित मूल्यांकन प्रस्तुत करना उनके समीक्षक व्यक्तित्व के प्रमुख गुण हैं। यद्यपि उन्होंने स्वतंत्र रूप से समीक्षा की कोई पुस्तक नहीं लिखी और न ही कृतियों और विभिन्न कला रूपों के निश्चित और शाश्वत प्रतिमान ही निर्मित किए, फिर भी इन स्तम्भों में विभिन्न कला रूपों पर उनकी टिप्पणियों, कृतियों की समीक्षाएँ उनके मर्मज्ञ और सहृदय समीक्षक होने का यथेष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

पत्रकार के रूप में

साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति ही पत्रकारिता के क्षेत्र में भी सर्वेश्वर को विशेष ख्याति मिली। 'दिनमान' में उपसंपादक के पद पर कार्य करते हुए पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने अविस्मरणीय योगदान दिया। जीवन की अन्य विभिन्न घटनाओं, जिसे उन्होंने कविता, कहानी या नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत नहीं किया, उन्हें पत्रकारिता द्वारा पूरी सतर्कता, रोचकता और सहृदयता से अपने बहुचर्चित स्तम्भ 'चरचे और चरखे' में व्यक्त किया। इस स्तम्भ में उन्होंने राजनीतिक अंतर्विरोधों के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और शैक्षणिक वातावरण में व्याप्त विडम्बनापूर्ण

विसंगतियों को पूरी प्रखरता और रोचकता के साथ प्रस्तुत किया। उनका पत्रकार व्यक्तित्व उनके कवि, कथाकार और नाटककार व्यक्तित्वों का पूरक है। अपनी कविताओं, कहानियों और नाटकों में वे जिस उपेक्षित वर्ग के सामान्य मनुष्य की चिंताओं और आकांक्षाओं को व्यक्त करते हुए उसे रचनात्मक संघर्ष से जोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे, उसी वर्ग के उपेक्षित, भूखे, गरीब, किसान, बेरोजगार, बच्चे, स्त्रियों उनकी पत्रकारिता के भी केंद्र में हैं। उनके बेहतर जीवन और सुखद भविष्य के निर्माण के लिए उन्होंने विद्रोह का अपना स्वर यहाँ और अधिक तीखा और तेज कर दिया है। इन स्थितियों के लिए पूरी व्यवस्था पर प्रहार करते हुए उसे जनता के सुख और समृद्धि का माध्यम बनाने के लिए उसके विरुद्ध प्रवल जनमत का निर्माण किया।

अधिक-से-अधिक पाठकों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए उन्होंने एक नई भाषा रची, जो न तो तकनीकी भाषा थी और न ही गोलमोल प्रशंसापरक भाषा। यह वह भाषा थी जो पाठक, कलाकार, समीक्षक और पत्रकार के बीच एक नए स्तम्भ की स्थापना करती है। उन्होंने हिंदी पत्रकारिता को सर्वधा नया स्तर और गौरव प्रदान किया। कवि मन का स्पंदन और अनुभूति उनकी पत्रकारिता का जैसा प्रतिमान निर्मित करती रही, वह आज भी अनेक पत्रकारों और रचनाकारों के लिए दुर्लभ है। उन्होंने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया कि यदि पत्रकार समर्थ है, तो वह रचनाकार को आगे-पीछे कहीं-न-कहीं से दिशा-निर्देश भी कर सकता है। देश में घट रही हर स्थिति पर उनकी वेलाग टिप्पणियाँ 'दिनमान' की सम्पादकीय नीति के लिए दिशा-निर्देश बन गईं। पत्रकारिता-लेखन उनके लिए किसी प्रकार भी दूसरे दर्जे का काम नहीं था। विश्व स्तर पर घटने वाली प्रायः सभी प्रमुख घटनाओं की सूचना से वे अपने स्तम्भ का ताना-बाना बुनकर उसे उचित निष्पादन और संवेदनात्मक विवेचन के साथ अभिव्यंजक भाषा में प्रस्तुत करते रहे। उन्होंने अपनी पत्रकारिता के लक्ष्य में साहित्यकार, कलाकार, पत्रकार, विचारक, ऑफिस के कर्मचारी, गाँव के किसान, मजदूर और छोटे-मोटे कार्यकर्ता तथा झुग्गियों में रहने वाले अत्यंत निरीह मानव के लिए बेहतर जीवन और सुखद भविष्य के लिए उन्होंने बराबर संघर्ष किया। पत्रकारिता के क्षेत्र में उनका यह योगदान अविस्मरणीय है।""

उन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रयोग संपादन, यात्रा-संस्मरण, अनुवाद आदि विविध क्षेत्रों में किया। अपनी रूस-यात्रा का रोचक और जीवंत वर्णन उन्होंने अपनी लघु पुस्तक 'कुछ रंग कुछ गंध' में किया है। "इसकी वर्णन-शैली इतनी रुचिकर है कि उसमें सोवियत जन-जीवन की सांस्कृतिक पहचान, उनका अपने देश के प्रति गहरा लगाव, निष्ठा और कर्तव्य बोध, सब कुछ एक चित्र की तरह प्रत्यक्ष हो उठता है।

इस कृति में उनका पत्रकार व्यक्तित्व भी पूरी सतर्कता से हर घटना के साथ-साथ चलता है। संभवतः इसी कारण वे जहाँ सोवियतवासियों के जीवन की राष्ट्रीय प्रगति और स्मृद्धिशाली जीवंत छवियों, प्रस्तुत कर सके हैं, वही इसके समानांतर अपने देशवासियों की राष्ट्र-प्रेम के प्रति उदासीनता, ईमानदारी के घोर अभाव तया एक नागरिक के रूप में अपने कर्तव्य के प्रति लापरवाह लोगों के ऊपर अपना गहरा होम भी व्यक्त करते हैं। इसी पुस्तक के दूसरे भाग में उन्होंने कुछ प्रसिद्ध रूसी कवियों की चर्चित कविताओं का अनुवाद करते हुए उनकी संवेदना में स्वयं को भी सम्मिलित पाया है ।"

वस्तुतः सर्वेश्वर एक सर्वतोन्मुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। "मानवीय जीवन की अनेक विसंगतियों और अंतर्विरोधों की व्याख्या और विश्लेषण करते हुए उन्होंने इनके विरुद्ध रचनात्मक स्तर पर विरोध किया है। उनके साहित्य-सृजन का महत्त्व कलात्मकता की अपेक्षा उसमें निहित जीवन-दृष्टि और जीवन-मूल्य अर्थात् रचनात्मक स्तर पर उनके द्वारा किए गए संघर्ष के आधार पर निर्मित होना चाहिए। पत्रकारिता इसका सबसे अनुकूल माध्यम था, अतः वहाँ उनकी इन दृष्टियों, मूल्यों और संघषों को सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति मिल सकी है।"" अपनी सशक्त व निर्भीक पत्रकारिता से उन्होंने साहित्यिक व सामाजिक विसंगतियों पर तीव्र प्रहार व व्यंग्य किए है।

संदर्भ

1. सर्वेश्वर व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 297
2. तीसरा सप्तक सं. अज्ञेय, पृ. 332
3. सर्वेश्वर व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 298
4. तीसरा सप्तक सं. अज्ञेय, पृ. 332
5. सर्वेश्वर: व्यक्तित्व और कृतित्य डॉ. रविंद्र उपाध्याय, पृ. 299
6. वही, पृ 297
7. वही, पृ 299
8. बही, पृ. 302
9. वही, पृ. 305
10. यही, पृ. 307
11. बही, पृ. 309
12. वही, पृ. 310
13. वही, पृ. 311